1.4

प्राकृत ग्रन्थ परिषद् : ४०

प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण

के. आर. चन्द्र

द. मा. प्राकृत ग्रन्थ परिषद्
अहमदाबाद

प्राकृत ग्रन्थ परिषद् : ४०

प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण

के. आर. चन्द्र

द. मा. प्राकृत ग्रन्थ परिषद्
अहमदाबाद

प्रकाशक : र. म. शाह
मन्त्री,
द. मा. प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी,
१२, भगतबाग सोसायटी, शारदा मंदिर रोड़
अहमदाबाद-३८०००७

प्रथम आवृत्ति : १९८२
प्रतियाँ : १०००

द्वितीय आवृत्ति : २००१
प्रतियाँ : ५००

मूल्य : रु. ४०-००

मुद्रक : क्रिष्णा ग्राफिक्स
किरीट हरजीभाई पटेल
९६६, नारणपुरा जूना गाँव,
अहमदाबाद-३८००१३
दूरभाष : ७४९४३९३

प्रोफेसर डॉ. हरिवल्लभ भायाणी
की स्मृति में

जिनसे मुझे प्राकृत भाषाओं के विशिष्ट
अध्ययन के लिए निरन्तर प्रेरणा और
मार्ग-दर्शन मिलता रहा. ।

आमुख

डॉ. चन्द्र लिखित प्राकृत भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण नामक ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण प्राकृत के अध्येताओं और विद्वानों के समक्ष रखते हुए प्राकृत ग्रन्थ परिषद् को प्रसन्नता हो रही है । द्वितीय संस्करण के प्रकाशन की आवश्यकता हुई यही दिखाता है कि ग्रन्थ उपयोगी सिद्ध हुआ है । इस दूसरे संस्करण में डॉ. चन्द्र ने कुछ नई सामग्री भी जोडी है जिससे पुस्तक की उपयोगीता ओर बढ गई है । उन्होंने तुलनात्मक और ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्राकृत व्याकरण के पाठ्यपुस्तक का निर्माण किया है, अतः शुष्क विषय भी रोचक बन गया है । प्राकृत भाषाओं के अध्यापनकार्य में एक साधन के रूप में इस पुस्तक का उपयोग लाभप्रद बनेगा यह निश्चित है ।

द. मा. प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी
१२, भगतबाग, सोसायटी
अहमदाबाद-३८०००७
मार्च १५, २००१

प्रधान सम्पादक
नगीन जी. शाह
र. म. शाह

द्वितीय संस्करण का प्रास्ताविक

इस ग्रंथ का प्रथम संस्करण १९८२ में छापा था और लगभग दो-तीन वर्षों से यह पुस्तक नहीं मिल रहा था। विद्यार्थियों और अध्यापकों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

इसके प्रथम संस्करण में 'प्राकृत भाषाओं में प्राक्-संस्कृत तत्त्व' नामक शीर्षक वाला नौवा अध्याय था उसे इसमें से निकाल दिया गया है। अर्धमागधी भाषा के विषय में जो जो नवीन सामग्री प्रकाश में आयी है उसको ध्यान में रखते हुए इस ग्रंथ के परिशिष्ट के रूप में उसके व्याकरण से संबंधित नयी सामग्री जोड़ी गयी है। जिससे मध्यवर्ती व्यंजनों में होने वाले ध्वनि-परिवर्तन संबंधी नयी जानकारी प्रकाश में लायी गयी है और अर्धमागधी भाषा जैन महाराष्ट्री से कितनी स्वतंत्र और अलग भाषा है यह भी स्पष्ट हो रहा है। इसके साथ साथ एक प्राचीन आगम ग्रंथ 'इसिभासियाइं' की वह शब्दावली भी जोड़ी गयी है जिसमें मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों और महाप्राण व्यंजनों की स्थिति यथावत् है और वे शब्द पालि के समान हैं जिससे अर्धमागधी की अन्य प्राकृतों से क्या विशिष्टता है और वह पालि से कितनी निकट है यह भी स्पष्ट हो जाता है।

इस द्वितीय संस्करण को प्रकाशित करने के लिए स्वर्गीय पं. दलसुखभाई मालवणिया और डॉ. हरिवल्लभ भायाणी ने जो सम्मति प्रदान की थी तदर्थ उनका सहृदय आभार मानता हूँ और अब उसे प्रकाशित करने के लिए प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी और उसके नये पदाधिकारियों डॉ. नगीनभाई जी. शाह और र. म. शाह का आभार मानता हूँ।

इस ग्रंथ के प्रूफ-संशोधन में डॉ. शोभना आर. शाह ने सहयोग दिया है तदर्थ उनका भी आभार मानता हूँ।

२६ मार्च, २००१ — के. आर. चन्द्र

प्रथम संस्करण
का
प्रास्ताविक

लगभग बीस वर्ष के अपने अध्यापन के अनुभव को ध्यान में रखकर यह पुस्तक तैयार किया गया है । इसका प्रारंभ करते समय यह दृष्टि थी कि प्राकृत के प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए ही इसे लिखा जाय परंतु दो अध्याय पूरे करने के बाद यह ख्याल आया कि उच्च-स्तरीय विद्यार्थियों के लिए भी इसे उपयोगी बनाया जाय एवं इस में सभी प्राकृतों (पालि-प्राकृत-अपभ्रंश) का समावेश किया जाय तथा उन्हें बन स्के वहाँ तक तुलनात्मक रूप में प्रस्तुत किया जाय । आगे चलकर अध्याय आठ में देश्य शब्दों का विश्लेषण भी जोड़ा गया है । अध्याय नौ तो इसीलिए जोड़ा गया है कि प्राकृत भाषा की उत्पत्ति के विषय में हमारा जो पुराना ख्याल है उसमें संशोधन की आवश्यकता है ।

प्राकृत के प्रारंभिक विद्यार्थियों के लिए ब्लेक टाइप में दी गयी सामग्री पर्याप्त मानी जानी चाहिए जबकि उच्चस्तरीय अध्ययन के लिए सभी सामग्री उपयोगी सिद्ध होगी । विद्वान अध्यापक के मन में एक प्रश्न स्वभावतः उत्पन्न होगा कि मध्ययुगीन भारतीय आर्य भाषाओं के विकास को ध्यान में रखते हुए पालि भाषा को प्रथम स्थान न देकर महाराष्ट्री प्राकृत को यह स्थान क्यों दिया गया है । प्रश्न उचित है परंतु हमारा स्पष्टीकरण सिर्फ इतना ही है कि इस पुस्तक का आयोजन प्राकृत के विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर किया गया है और इसीलिए सरलतम भाषा महाराष्ट्री को प्रथम स्थान दिया गया है और बाद में अन्य भाषाओं को और वह भी काल-क्रम की दृष्टि से नहीं परंतु सुविधा और सरलता को ध्यान में रखकर उनके विषय में लिखा गया है । इसी कारण पहले अध्याय में मात्र महाराष्ट्री प्राकृत के ध्वनि-परिवर्तन के नियम दिये गये हैं और दूसरे अध्याय में अन्य प्राकृतों की विशिष्टताएँ दर्शायी गयी है । तीसरे अध्यया से पद-रचना का विषय लिया गया है जिसमें प्राकृत एवं पालि के नाम-रूप साथ साथ दिये गये हैं । अपभ्रंश के नाम-रूप बाद में अलग से जोड़े गये हैं । चौथे अध्याय (सर्वनाम) से प्राकृत, पालि एवं

अपभ्रंश को साथ साथ लिया गया है और यही पद्धति आठवें अध्याय तक अपनायी गयी है । ऐसा करने के पीछे यही उद्देश्य था कि एक बार विद्यार्थी का प्राकृत भाषा में प्रवेश हो जाय तो बाद में उसे तुलनात्मक पद्धति से पढ़ने में सुविधा होगी ।

इस पुस्तक को तैयार करने में एवं सामग्री जुटाने में अनेक ग्रंथों एवं लेखों का उपयोग किया गया है और जिन जिन लोगों ने सलाह-सूचन दिये हैं उन सब का मैं हार्दिक आभार मानता हूँ ।

इस क्षेत्र में डो. ह.चू.भायाणी से हमेशा ही प्रेरणा और मार्गदर्शन मिलता रहा है और उन्होंने अपने बहुमूल्य समय में से थोड़ा सा समय निकाल कर जो 'दो शब्द' इस पुस्तक के विषय में लिखे हैं उसके लिए भी मैं उनका आभारी हूँ ।

प्राकृत विद्यामंडल का भी मैं आभारी हूँ जिसने इस पुस्तक को प्रकाशित करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है ।

श्री स्वामिनारायण मुद्रण मंदिर का भी आभार मानता हूँ जिसने इस पुस्तक को मुद्रित किया है ।

अन्त में प्रस्तुत पुस्तक में जो भूलें एवं क्षतियाँ रह गयी हो उन्हें विद्वान लोग मेरे ध्यान में लाने की कृपा करेंगे ऐसी मेरी उनसे विनंति है ।

जनवरी २, १९८२ — के. आर. चन्द्र

दो शब्द

वैसे तो डॉ. चन्द्र ने यह व्याकरण शैक्षणिक दृष्टि से प्राकृत भाषा के प्रारम्भिक एवं उच्चस्तरीय विद्यार्थियों के लिये तैयार किया है, फिर भी इसकी कुछ विशेषताएँ हैं । विषय के निरूपण में उन्होंने तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाया है तथा विद्यार्थियों का स्तर ध्यान में रखते हुए जहाँ हो सके वहाँ इस विषय के आधुनिक तथ्योंका यथाशक्य समावेश किया है । अद्यतन ज्ञानसामग्री का लाभ उठाकर नये पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण हमें करते रहना चाहिये । इसके लिये अध्यापनकार्य का समुचित अनुभव भी आवश्यक है । प्रस्तुत प्रयास इस दृष्टि से भी सराहनीय है । इसकी उपयुक्तता का निर्णय तो अभ्यास के वर्गों में ही किया जा सकता है । प्रशिष्ट भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन को बनाये रखने के लिए ऐसे छोटे प्रयास भी बड़े मूल्यवान होते हैं ।

अहमदाबाद
दिसम्बर १, १९८१

ह. चू. भायाणी

प्रारंभिक

उपलब्ध साहित्य में वेद-साहित्य भारतवर्ष का सबसे प्राचीन साहित्य है। वेद-संहिताओं में भाषा की एक-रूपता नहीं है क्योंकि उस काल में जनता द्वारा जो भाषा बोली जाती थी उसकी स्थानीय विविधता के दर्शन इस साहित्य में होते हैं। इस वैविध्य को दूर करके जन-भाषा को संस्कार देकर उसमें जो एकरूपता लायी गयी उसे शिष्ट भाषा के रूप में संस्कृत कहा गया। जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे विविधतावाली जनता की पुरानी भाषा बदलती गयी और उसमें से अनेक प्राकृत जन-भाषाओं का विकास होता गया। इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं का मूल उत्पत्ति स्त्रोत जन-भाषा हो रहा। इसीलिए दोनों भाषाओं के बीच में अनेक समानताएँ और विषमताएँ प्राप्त होती हैं। स्वाभाविक मातृभाषाएँ अथवा जन-भाषाएँ अनेक प्राकृतों के रूप में प्रचलित हुईं और उन्हें संस्कार देकर जो जो रूप बनाये गये वे शिष्ट भाषाओं के रूप में प्रचलित हुईं।

प्राकृत भाषाओं का क्रमपूर्वक विकास इस प्रकार है :

प्रथम स्तर : सबसे पहले परिवर्तन इस प्रकार पाये जाते हैं :

(i) ऋ = अ, इ, उ ; ऐ = ए (आइ-अइ-ए); औ = ओ (आउ-अउ-ओ) ।

(ii) तीन संयुक्त व्यंजनों के बदले में सिर्फ दो ही संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग ।

(iii) संयुक्त व्यंजनों में स्वर-भक्ति, समीकरण की प्रक्रिया और अन्य परिवर्तन ।

द्वितीय स्तर : अघोष व्यंजनों को घोष बनाना ।

तृतीय स्तर : मध्यवर्ती अल्पप्राण का लोप और महाप्राण का ह् में परिवर्तन ।

दो शब्द

वैसे तो डॉ. चन्द्र ने यह व्याकरण शैक्षणिक दृष्टि से प्राकृत भाषा के प्रारम्भिक एवं उच्चस्तरीय विद्यार्थियों के लिये तैयार किया है, फिर भी इसकी कुछ विशेषताएँ हैं । विषय के निरूपण में उन्होंने तुलनात्मक एवं ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाया है तथा विद्यार्थियों का स्तर ध्यान में रखते हुए जहाँ हो सके वहाँ इस विषय के आधुनिक तथ्योंका यथाशक्य समावेश किया है । अद्यतन ज्ञानसामग्री का लाभ उठाकर नये पाठ्य-पुस्तकों का निर्माण हमें करते रहना चाहिये । इसके लिये अध्यापनकार्य का समुचित अनुभव भी आवश्यक है । प्रस्तुत प्रयास इस दृष्टि से भी सराहनीय है । इसकी उपयुक्तता का निर्णय तो अभ्यास के वर्गों में ही किया जा सकता है । प्रशिष्ट भाषाओं के अध्ययन-अध्यापन को बनाये रखने के लिए ऐसे छोटे प्रयास भी बड़े मूल्यवान होते हैं ।

अहमदाबाद
दिसम्बर १, १९८१

ह. चू. भायाणी

प्रारंभिक

उपलब्ध साहित्य में वेद-साहित्य भारतवर्ष का सबसे प्राचीन साहित्य है । वेद-संहिताओं में भाषा की एक-रूपता नहीं है क्योंकि उस काल में जनता द्वारा जो भाषा बोली जाती थी उसकी स्थानीय विविधता के दर्शन इस साहित्य में होते हैं । इस वैविध्य को दूर करके जन-भाषा को संस्कार देकर उसमें जो एकरूपता लायी गयी उसे शिष्ट भाषा के रूप में संस्कृत कहा गया । जैसे जैसे समय बीतता गया वैसे वैसे विविधतावाली जनता की पुरानी भाषा बदलती गयी और उसमें से अनेक प्राकृत जन-भाषाओं का विकास होता गया । इस प्रकार संस्कृत और प्राकृत दोनों ही भाषाओं का मूल उत्पत्ति स्रोत जन-भाषा हो रहा । इसीलिए दोनों भाषाओं के बीच में अनेक समानताएँ और विषमताएँ प्राप्त होती हैं । स्वाभाविक मातृभाषाएँ अथवा जन-भाषाएँ अनेक प्राकृतों के रूप में प्रचलित हुईं और उन्हें संस्कार देकर जो जो रूप बनाये गये वे शिष्ट भाषाओं के रूप में प्रचलित हुईं ।

प्राकृत भाषाओं का क्रमपूर्वक विकास इस प्रकार है :

प्रथम स्तर : सबसे पहले परिवर्तन इस प्रकार पाये जाते हैं :

(i) ऋ = अ, इ, उ ; ऐ = ए (आइ-अइ-ए); औ = ओ (आउ-अउ-ओ) ।

(ii) तीन संयुक्त व्यंजनों के बदले में सिर्फ दो ही संयुक्त व्यंजनों का प्रयोग ।

(iii) संयुक्त व्यंजनों में स्वर-भक्ति, समीकरण की प्रक्रिया और अन्य परिवर्तन ।

द्वितीय स्तर : अघोष व्यंजनों को घोष बनाना ।

तृतीय स्तर : मध्यवर्ती अल्पप्राण का लोप और महाप्राण का ह् में परिवर्तन ।

चतुर्थ स्तर : अंत में नाम-विभक्ति और क्रिया-प्रत्ययों में दूरगामी परिवर्तन ।

प्राकृत भाषा के जो शब्द और रूप संस्कृत के बिलकुल समान हैं उन्हें तत्सम कहा जाता है और जिनमें ध्वनि-परिवर्तन हुआ है उन्हें तद्भव कहा जाता है । अन्य शब्द जिनकी प्रायः संस्कृत के साथ तुलना नहीं की जा सकती और जिनका उद्गम कोई अन्य भाषाओं से हुआ है उन्हें देश्य शब्द कहा जाता है । ये तीनों प्रकार के शब्द इस प्रकार हैं :-

तत्सम : कुमार, अभय, देव, बद्ध, रमणी, आरूढ, अहं.

तद्भव : वयण (वदन), दाहिण (दक्षिण), भज्जा (भार्या), जाम (याम), तस्स (तस्य), घेत्तूण (गृहीत्वा).

देश्य : लडह (रम्य), मरट्ट (गर्व), कोट्ट (दुर्ग), बिट्टी (पुत्री), हल्लफल्ल (त्वरा), डाल (शाखा), गोस (प्रभात), चंग (रम्य), चड (आरुह्), दिक्करिया (पुत्री).

वर्ण-माला

स्वर

	कण्ठ्य	तालव्य	ओष्ठ्य	कंठ-तालव्य	कंठ-ओष्ठ्य
ह्रस्व :	अ	इ	उ	ऍ	ऑ
दीर्घ :	आ	ई	ऊ	ए	ओ

अनुस्वार ं अनुनासिक ँ

व्यंजन

उच्चारण स्थल	स्पर्श				नासिक्य	वर्ग
कण्ठ्य	क्	ख्	ग्	घ्	ङ्	क-वर्ग
तालव्य	च्	छ्	ज्	झ्	ञ्	च-वर्ग
मूर्धन्य	ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्	ट-वर्ग
दन्त्य	त्	थ्	द्	ध्	न्	त-वर्ग
ओष्ठ्य	प्	फ्	ब्	भ्	म्	प-वर्ग

अन्तस्थ (अर्धस्वर) :

य् (तालव्य), र् (मूर्धन्य), ल् (दन्त्य), व् (दन्त-ओष्ठ्य)

ऊष्म स् महाप्राण ह्

नोट : ह्रस्व ऍ और ऑ का प्रयोग प्राय: संयुक्त व्यंजनों के पूर्व होता है : जैसे, खॆत्त, ऑड्ढ, तॆल्ल, सॊम्म, पॆम्म, जॊव्वण.

ञ् और ङ् का प्रयोग स्वर के साथ प्राय: नहीं होता हैं और न ही प्राय: संयुक्त रूप में ही । सजातीय किसी अन्य व्यंजन के साथ आने

पर उनका प्रायः अनुस्वार हो जाता है, जैसे-रंज(रञ्ज), किंकर (किङ्कर) परंतु प्राचीन काल की प्राकृतों में प्रायः ऐसा नहीं होता था और पालि भाषा की तरह संयुक्त रूपमें सजातीय व्यंजन के साथ ङ् और ञ् का प्रयोग होता था। पालि भाषा में ञ् और ङ् का सजातीय व्यंजन के साथ और ञ् का स्वर के साथ एवं द्वित्व रूप में प्रयोग होता है ।

वर्णमाला का अन्य वर्गीकरण

अघोष : क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ्

घोष : ग्, घ्, ज्, झ्, ड्, ढ्, द्, ध्, ब्, भ्

अल्पप्राण : क्, ग्, च्, ज्, ट्, ड्, त्, द्, प्, ब्

महाप्राण : ख्, घ्, छ्, झ्, ठ्, ढ्, थ्, ध्, फ्, भ्

स्वर, अन्तस्थ और नासिक्य व्यंजन घोष ध्वनियाँ हैं ।

नासिक्य व्यंजन और अन्तस्थ अल्पप्राण हैं ।

स् और ह् महाप्राण ध्वनियाँ हैं ।

अनुक्रमणिका

१. ध्वनि-परिवर्तन

प्राकृत भाषाओं में ध्वनि-सम्बन्धी परिवर्तन उच्चारण में प्रायः सरलता लाने और कम प्रयत्न करने की कोशिश के कारण हुए हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि यदि कोई कार्य कम परिश्रम से हो जाय तो उसके लिए अधिक परिश्रम करने की क्या आवश्यकता है। इसी परिणाम-स्वरूप ये परिवर्तन हुए हैं।

क. स्वर-विकार

१. (अ) प्राकृत भाषाओं में विसर्ग (:) का प्रयोग नहीं होता है। 'अ' कारान्त शब्द के बाद विसर्ग आता है तब 'अः' का वैकल्पिक 'ओ' हो जाता है : रामो (रामः), तओ (ततः)।

(ब) ऋ, ऐ और औ के परिवर्तन इस प्रकार होते हैं :

ऋ = अ : तण (तृण), वत्त (वृत्त), दढ (दृढ), वसभ (वृषभ), कय (कृत)

इ : मिग (मृग), इसि (ऋषि), गिद्ध (गृद्ध)

उ : मुणाल (मृणाल), पुच्छ (पृच्छ), वुड्ढ (वृद्ध)

ए : गेह (गृह), वेंट (वृन्त), गेज्झइ (गृह्यते)

रि : रिद्धि (ऋद्धि), रिण (ऋण), रिसि (ऋषि)

(स) ऐ = ए : वेर (वैर), नेमित्तिअ (नैमित्तिक), एरावण (ऐरावण), देवसिय (दैवसिक)

अइ : वइर (वैर), दइव (दैव), भइरव (भैरव), कइलास (कैलाश)

(द) औ = ओ : कोरव (कौरव), गोरव (गौरव), पोराणिअ (पौराणिक), सोजण्ण (सौजन्य)

अउ : कउरव (कौरव), गउरव (गौरव), पउर (पौर)

२. स्वरों में कभी कभी मात्रात्मक और गुणात्मक परिवर्तन निम्न प्रकार से होते हैं : –

(अ) मात्रात्मक परिवर्तन :

अ=आ : वारिस (वर्ष), चाउरंत (चतुरन्त), सामिद्धि (समृद्धि), पावयण (प्रवचन), पारकेर (परकीय)

इ=ई : भिउडी (भृकुटि) उ=ऊ मूसल (मुसल)

आ=अ : कुमर (कुमार), जह (यथा), पहर (प्रहार), व (वा), चमर (चामर)

ई=इ : अलिय (अलीक), आणिय (आनीत), करिस (करीष)

ऊ=उ : महुअ (मधूक), उलुय (उलूक), वाउल (वातूल)

(ब) गुणात्मक परिवर्तन :

अ=इ : किरिण (किरण), उत्तिम (उत्तम)

उ : पढुम (प्रथम), वुंद्र (वन्द्र)

ए : वेल्ली (वल्ली), सेज्जा (शय्या)

ओ : परोप्पर (परस्पर), पोम्म (पद्म)

आ=इ : सइ (सदा), निसिअर (निशाकर), साहिज्ज (साहाय्य)

उ : उल्ल (आर्द्र)

ए : मेत्त (मात्र), पारेवअ (पारावत)

इ=अ : तित्तिर (तित्तिरि), इअ (इति)

उ : उसु (इषु), उच्छु (इक्षु), विच्छुअ (वृश्चिक)

ए : पेंड (पिण्ड), सेंदूर (सिन्दूर)

ई=अ : हरडई (हरीतकी)

उ : जुण्ण (जीर्ण)

ऊ : विहूण (विहीन)

ए : पेऊस (पीयूष), केरिस (कीदृश), नेड (नीड)

उ=अ : गरु (गुरु), मउड (मुकुट)

आ : बाहा (बाहु)

इ : पुरिस (पुरुष)

ऊ=अ : दुअल्ल (दुकूल)

ए : नेउर (नूपुर)

ओ : तोणीर (तूणीर), मोल्ल (मूल्य)

ए=इ : दिअर (देवर), विअणा (वेदना), सिंधव (सेंधव<सैन्धव), धीर (धेर<धैर्य)

ओ=अ : मणहर (मनोहर), सररुह(सरोरुह), अन्नन्न (अन्योन्य)

आ : गारव (गोरव<गौरव)

उ : मुअण (मोचन), दुवारिअ (दोवारिअ<दौवारिक)

ऊ : महूसव (महोत्सव)

(स) कभी कभी स्वर का स्थान-परिवर्तन भी पाया जाता है :

मुणिस (मनुष्य)

३. (अ) संयुक्त व्यंजन के पूर्व का दीर्घ स्वर प्रायः ह्रस्व बन जाता है :

मग्ग (मार्ग), पुण्ण (पूर्ण), रज्ज (राज्य), पंडव (पाण्डव), सक्क (शाक्य), वत्ता (वार्ता)

(ब) अनुस्वार-युक्त दीर्घ स्वर भी ह्रस्व बन जाता है :

पंसु (पांशु), मंस (मांस), सीयं (सीयां<सीताम्)

(स) संयुक्त व्यंजन में से एक व्यंजन का लोप होने पर पूर्व

का ह्रस्व स्वर दीर्घ बन जाता है :

वास (वर्ष), जीहा (जिह्वा), ऊसव (उत्सव)

(द) अनुस्वार का लोप होने पर भी ऐसा ही होता है :

सीह (सिंह), वीसइ (विंशति)

(क) संयुक्त व्यंजन के पूर्ववाला दीर्घ स्वर संयुक्त व्यंजन में से एक का लोप होने पर दीर्घ ही बना रहता है : दीह (दीर्घ), आणा (आज्ञा), सीस (शीर्ष), ईसर (ईश्वर), तूर (तूर्य)

(ख) व्यंजन का द्वित्व करने पर पूर्वगामी दीर्घ स्वर ह्रस्व बन जाता है : किड्डा (क्रीडा), खत्त (खात), दिज्जइ (दीयते)

४. प्रारंभिक स्वर-लोप :

कभी कभी शब्द के आदि स्वर का लोप हो जाता है :

रण्ण (अरण्य), दग (उदक), ति (इति), व (इव), पि (अपि), हं (अहम्), पोसह (उपवसथ)

५. कभी कभी अर्धस्वर य् और व् का संप्रसारण होता है :

य=इ : पडिणीय (प्रत्यनीक), वीइक्कंत (व्यतिक्रान्त)

व=उ : तुरियं (त्वरितम्), सुविण (स्वप्न)

अय=ए : चोरेइ (चोरयति), कहेइ (कथयति)

अव=ओ : ओसर (अवसर), ओइण्ण (अवतीर्ण), लोण (लवण), ओसाण (अवसान)

ख. व्यंजन-विकार

(१) असंयुक्त व्यंजन

ऊष्म व्यंजन 'श्' ओर 'ष्' का प्रायः 'स्' हो जाता है :

श्=स् : सस (शश), कलस (कलश), सिरा (शिरा), दस (दश), सरण (शरण), रसणा (रशना)

ष्=स् : कसाय (कषाय), भूसण (भूषण), दोस (दोष), संड (षण्ड), मूसअ (मूषक)

(अ) प्रारंभिक व्यंजन

(१) प्रारंभिक 'य्' का प्रायः 'ज्' हो जाता है :

य्=ज् : जाम (याम), जोग (योग), जुग (युग), जोह (योध), जहा (यथा)

(२) प्रारंभिक 'न्' का वैकल्पिक 'ण्' हो जाता है :

न्=ण् : णिमित्त (निमित्त), णाम (नाम), णय (नय), णर (नर), णअर (नगर)

[नर, नारी, नाम, नयर]

(३) कभी कभी कुछ व्यंजनों का परिवर्तन अपवाद के रूप में निम्न प्रकार से भी पाया जाता हे :

(i) क=च : चिलाअ (किरात)

भ=ब : बहिणी (भगिनी)

म=व : वम्मह (मन्मथ)

ल=ण : णंगल (लाङ्गल), णंगूल (लाङ्गूल)

(ii) अल्प प्राण व्यंजन का अपवाद के रूप में महाप्राण व्यंजन में बदलना :

खील (कील), खुज्जा (कुब्जा), फरुस (परुष), फलिहा (परिखा), फणस (पनस), फाडण (पाटन), भिंभिसार (बिम्बिसार)

(iii) दन्त्य व्यंजन का मूर्धन्य व्यंजन में बदलना :

डहर (दहर-दभ्र), डाह (दाह), डहइ (दहति), डसण (दशन)

(iv) श्, ष्, स्, का छ् में बदलना :

छाव (शाव), छिरा (शिरा), छ (षट्), छुहा (सुधा), छत्तिवण्ण (सप्तपर्ण)

(ब) मध्यवर्ती व्यंजन

[मध्यवर्ती व्यंजन उसे कहते हैं जो दो स्वरों के बीच में आता है, जैसे-रति (र्+अ, त्+इ) में त् और वचन में (व्+अ, च्+अ, न्+अ) में च् और न् मध्यवर्ती व्यंजन हैं ।]

(१) मध्यवर्ती न् प्रायः ण् में बदलता है :

न्=ण् : खणण (खनन), समाण (समान), जण (जन), आसण (आसन), रयण (रत्न)

[वाणर, वानर, अणल, अनल]

(२) स् का कभी कभी ह् हो जाता है :

दह (दस-दश), पाहाण (पासाण-पाषाण), दिअह दिवह, (दिवस).

(३) मध्यवर्ती अल्प-प्राण व्यंजन ('ट' वर्ग के सिवाय) क्, ग्, च्, ज्, त्, द्, प्, अन्तस्थ य् और व् का प्रायः लोप हो जाता है। [उनमें से शेष रहने वाला स्वर यदि अ या आ हो तो वह वैकल्पिक

रूप से **य** अथवा **या** हो जाता है और इसे य श्रुति कहते हैं। यह य श्रुति प्रायः जैन प्राकृत की विशेषता है।]

क : सअल (सकल), सउण (शकुन), सेवय (सेवक), दारिया (दारिका), मडय (मृतक)

ग : अणुराअ (अनुराग), गअण (गगन), सायर (सागर)

च : लोअण (लोचन), रुइर (रुचिर), पउर (प्रचुर), वयण (वचन), वियार (विचार)

ज : रअणी (रजनी), भुआ (भुजा), राया (राजा), भायण (भाजन), पया (प्रजा)

त : जीअ (जीत), रइ (रति), अईअ (अतीत), ताय (तात), रसायल (रसातल), माया (माता)

द : मअण (मदन), णई (नदी), आएस (आदेश), पओस (प्रदोष), वेय (वेद), अन्नया (अन्यदा)

प : कइ (कपि), गोउर (गोपुर), दिसायाल (दिशापाल)

य : काअ (काय), मऊर (मयूर) पओवाह (पयोवाह), विओयण (वियोजन), पओजण (प्रयोजन)

व : भुअण (भुवन), देई (देवी), अडई (अटवी)
'प्' का 'व्' भी होता है :

प=व : मंडव (मण्डप), रूव (रूप), कविल (कपिल), उवाय (उपाय), उवहास (उपहास)

(४) मध्यवर्ती महाप्राण व्यंजन ('च' वर्ग और 'ट' वर्ग सिवाय) 'ख्', 'घ्', 'थ्', 'ध्', 'फ्' और 'भ्' का प्रायः 'ह्' हो जाता है :

ख : मुह (मुख), सही (सखी), लेह (लेख), साहा

(शाखा), मऊह (मयूख), मुहर (मुखर)

घ : जहण (जघन), ओह (ओघ), मेह (मेघ), लहु (लघु), दीह (दीघ-दीर्घ), रहुवीर (रघुवीर)

थ : रह (रथ), कहा (कथा), णाह (नाथ), गाहा (गाथा)

ध : अहर (अधर), विविह (विविध), महु (मधु), साहु (साधु), पहाण (प्रधान)

फ : मुत्ताहल (मुक्ताफल), सेहालिआ (शेफालिका)

भ : णह (नभ), सहा (सभा), आहरण (आभरण), सुरहि (सुरभि), पहाय (प्रभात)

(५) घोषीकरण :

(अ) अघोष 'ट्' और 'ठ्' प्रायः घोष 'ड्' और 'ढ्' में बदल जाते हैं :

ट्=ड् : तड (तट), कूड (कूट), चेडी (चेटी), कुडिल (कुटिल), जडिअ (जटित), बडुअ (बटुक), छडा (छटा), कडि (कटि)

ठ्=ढ् : पढ (पठ), कुढार (कुठार), मढ (मठ), कढिण (कठिन), सढ (शठ), धरवीढ (धरापीठ), कढोर (कठोर)

(ब) कभी कभी 'क्' घोष व्यंजन ग् में बदल जाता हैं :

एग (एक), नायग (नायक), आगार (आकार), लोग (लोक), मगर (मकर), तिग (त्रिक)

(६) मूर्धन्यीकरण और घोषीकरण :

(अ) दन्त्य व्यंजन कभी कभी मूर्धन्य बनकर फिर घोष हो जाते हैं :

पडिय (पतित), पडाया (पताका), सिढिल (शिथिल)

(ब) शब्द में ऋकार और रकार आने पर दन्त्य व्यंजन कभी कभी मूर्धन्य बनकर फिर घोष बन जाते है :

मडय (मृतक), पडिहार (प्रतिहार), पढम (प्रथम).

(७) **कुछ अन्य परिवर्तन :**

कभि कभी निम्न परिवर्तन पाये जाते हैं :

(अ) द्वित्वकरण :

एक्क (एक), तेल्ल (तैल), निहित्त (निहित), उच्चिय (उचित), पेम्म (प्रेम), बहुप्फल (बहुफल), परव्वस (परवश).

(ब) वर्ण-लोप :

उम्बर (उदुम्बर), सीया (शिबिका), राउल (राजकुल), अवरत्त (अपररात्र), अड (अवट), भाण (भाजन), आअ (आगत), हिअ (हृदय).

(स) वर्ण-व्यत्यय :

वाणारसी (वाराणसी), दीहर (दीरह<दीर्घ), पेरन्त (पयरन्त-पर्यन्त), अच्छेर (अच्छ्यर<अच्छरय<आश्चर्य), मरहट्ठ (महाराष्ट्र).

(द) कभी कभी ड्, द्, और र् का ल् हो जाता है :

ड्=ल् : तलाय (तडाग), गरुल (गरुड), वीला (व्रीडा), नियल (निगड), वलयामुह (वडवामुख), कीला (क्रीडा).

द्=ल् : पलित्त (प्रदीप्त), दोहल (दोहद), कलंब (कदम्ब), दुवालस (द्वादश).

र्=ल् : चलण (चरण), सुकुमाल (सुकुमार), हलिद्दा (हरिद्रा), मुहल (मुखर), फलिहा (परिखा).

(क) अपवाद के रूप में निम्न परिवर्तन भी पाये जाते हैं :

क=ह : चिहुर (चिकुर), फलिह (स्फटिक)
ख=क : संकला (श्रृङ्खला)
ग=ल : छाल (छाग)
ण=ल : वेलु (वेणु)
ट=ल : फलिह (स्फटिक) [ट्=ड्=ल्]
त=ह : भरह (भरत)
फ=भ : सेभालिआ (शेफालिका)
ब=व : अलावु (अलाबु), सवर (शबर)
व=म : नीमी (नीवी)

(ख) अंतिम व्यंजन

शब्द के अन्त में व्यंजन नहीं आता है । अंतिम व्यंजन का या तो लोप हो जाता है अथवा उसमें कोई स्वर का आगम हो जाता है या वह अनुस्वार में बदल जाता है ।

(१) लोप : जाव (यावत्), मण (मनस्), जग (जगत्)

(२) आगम : वणिअ (वणिज-वणिज्), दिसा (दिशा-दिश्), सरिया (सरिता-सरित्)

(३) अंतिम अनुनासिक व्यंजन का अनुस्वार हो जाता है : कहं (कथम्), रामं (रामम्), किं (किम्), एवं (एवम्), भवं (भवान्), भगवं (भगवान्)

(४) कभी कभी अंतिम व्यंजन अनुस्वार में बदल जाता है :

जं (यत्), सम्मं (सम्यक्), मणं (मनाक्), सक्खं (साक्षात्), मरणं (मरणात्)

(५) अपवाद : अर्धमागधी में अन्त में त् युक्त अकस्मात् का प्रयोग मिलता है ।

(२) संयुक्त व्यंजन

(अ) प्रारंभिक संयुक्त व्यंजन

(१) शब्द के प्रारंभ में संयुक्त व्यंजन प्रायः नहीं आते हैं ।

लोप : उनमें से प्रायः एक का लोप हो जाता है :
वइयर (व्यतिकर), णाय (न्याय), पिय (प्रिय), गाम (ग्राम), सर (स्वर), सहाव (स्वभाव), दीव (द्वीप), णेह (स्नेह), णाय (ज्ञात), थइअ (स्थगित), हस्स (ह्रस्व), कम (क्रम), थइर (स्थविर)

[चाग (त्याग), खण (क्षण), जूय (द्यूत), झाण (ध्यान), छुहिअ (क्षुधित)]

(२) मध्य में स्वरागम : कभी कभी संयुक्त व्यंजन के बीच में स्वर का आगम हो जाता है :

अ. सणेह (स्नेह)

इ. सिरी (श्री), सिणिद्ध (स्निग्ध), गिलाण (ग्लान)

उ. दुवार (द्वार), सुमरिय (स्मृत), सुमरण (स्मरण).

(३) अपवाद :

(i) अपवाद के रूप में संयुक्त व्यंजन के प्रारंभ में स्वर का आगम:
इत्थी (स्त्री)

(ii) अपवाद के रूप में निम्न संयुक्त व्यंजन प्रारंभ में रहते हैं :

ण्ह : ण्हाण (स्नान), ण्हारु (स्नायु), ण्हुसा (स्नुषा)

न्ह : न्हवण (स्नपन),

म्ह : म्हि (अस्मि), म्ह (स्मः)

ल्ह : ल्हसिअ (स्रस्त), ल्हसुण (लशुन), ल्हिक्क (नि+ली)

व्यंजन+र् : द्रह (ह्रद), प्रिय, व्रंद (वृन्द)

(ब) मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजन

(१) प्राकृत भाषा में एक साथ दो से अधिक व्यंजन संयुक्त रूप में नहीं आते हैं :

सत्त (सत्त्व), सामत्थ (सामर्थ्य), मन्त (मन्त्र), सत्थ (शस्त्र), रन्ध (रन्ध्र), जोण्हा (ज्योत्स्ना)

(२) समीकरण : अलग अलग वर्ग के दो व्यंजन प्रायः एक साथ नहीं रहते हैं। उनमें से एक को दूसरे के समान बना दिया जाता है। इस प्रक्रिया को समीकरण कहा जाता है।

समीकरण का सामान्य नियम यह है कि संयुक्त व्यंजनों में जो व्यंजन सबल (strong) होता है वह अबल (weak) व्यंजन को अपने समान बना देता है। व्यंजनों के बलाबल का क्रम इस प्रकार है :

(i) स्पर्श, (ii) अनुनासिक, (iii) ल, (iv) स, (v) व, (vi) य, और (vii) र.

जब समान बलवाले व्यंजन संयुक्त रूप में आते हो तब पहला व्यंजन दूसरे के समान हो जाता है : भत्त (भक्त), जम्म (जन्म).

असमान बल वाले संयुक्त व्यंजनों में से सबल व्यंजन अबल को अपने समान बना लेता है :

(i) लग्ग (लग्न), (ii) सुक्क (शुक्ल), (iii) अरण्ण (अरण्य), (iv) बिल्ल (बिल्व), (v) सल्ल (शल्य), (vi) सव्व (सर्व), (vii) वस्स (वर्ष), (viii) सिस्स (शिष्य)

समीकरण के निम्न दो प्रकार हैं :

(अ) पुरोगामी समीकरण : इसमें संयुक्त व्यंजन का द्वितीय व्यंजन प्रथम व्यंजन के समान बन जाता है :

अण्णया (अन्यदा), समग्ग (समग्र), कल्लाण (कल्याण), अण्णेसण (अन्वेषण), अवस्स (अवश्य)

(ब) पश्चगामी समीकरण : इसमें प्रथम व्यंजन द्वितीय के समान हो जाता है :

जुत्त (युक्त), सद्द (शब्द), खग्ग (खड्ग), जम्म (जन्म), कम्म (कर्म), सव्व (सर्व)

(क) संयुक्त व्यंजन में यदि एक व्यंजन महाप्राण हो तो दूसरा व्यंजन उस महाप्राण का अल्पप्राण हो जाता है और वह महाप्राण के पहले आता है :

पुरोगामी : विग्घ (विघ्न), विक्खाय (विख्यात), अब्भंतर (अभ्यन्तर)

पश्चगामी : सब्भाव (सद्भाव), उवलद्ध (उपलब्ध), समत्थ (समर्थ), विप्फुरिय (विस्फुरित)

(ड) संयुक्त व्यंजन में यदि एक ऊष्म व्यंजन हो और दूसरा अल्प प्राण व्यंजन हो तो वह अल्प प्राण व्यंजन ऊष्म व्यंजन के कारण महाप्राण व्यंजन में बदल जाता है और वह महाप्राण अपने ही अल्प प्राण के बाद में आता है :

पुक्खर (पुष्कर), पच्छिम (पश्चिम), कट्ठ (कष्ट), हत्थ (हस्त), पुप्फ (पुष्प), कक्ख (कक्ष), अक्खि (अक्षि)।

[क्ष का च्छ भी होता है : कच्छ (कक्ष), अच्छि (अक्षि), वच्छ (वृक्ष), दच्छ (दक्ष)]

स्वर विकार के प्रकरण में यह पहले ही कहा जा चुका है कि संयुक्त व्यंजन के पहले यदि स्वर दीर्घ हो तो उसे ह्रस्व बना दिया जाता हैं और यदि संयुक्त वयंजन में से एक का लोप हो जाय और पूर्वगामी स्वर ह्रस्व हो तो उसे दीर्घ बना दिया जाता है :

(i) परक्कम (पराक्रम), रज्ज (राज्य), मग्ग (मार्ग), तिण्ण (तीर्ण), तित्थ (तीर्थ), सिग्घ (शीघ्र), पुण्ण (पूर्ण), सुण्ण (शून्य)

(ii) वास (वर्ष), सीस (शिष्य), दूभग (दुर्भग)

(३) 'च' वर्ग में परिवर्तन :

य के साथ में संयुक्त रूप में आने वाला दन्त्य व्यंजन अनुक्रम से 'च' वर्ग में बदल जाता है :

त्य=च्च : सच्च (सत्य), अच्चंत (अत्यन्त), णिच्च (नित्य), अमच्च (अमात्य)

थ्य=च्छ : मिच्छा (मिथ्या), रच्छा (रथ्या), णेवच्छ (नेपथ्य), पच्छ (पथ्य)

द्य=ज्ज : अज्ज (अद्य), उज्जाण (उद्यान), उज्जम (उद्यम), विज्जा (विद्या)

ध्य=ज्झ : मज्झ (मध्य), सज्झ (साध्य), उवज्झाय (उपाध्याय), अओज्झा (अयोध्या)

(४) मूर्धन्यीकरण :

'ऋ' कार अथवा र कार के साथ आने वाले दन्त्य व्यंजन का कभी कभी मूर्धन्यीकरण हो जाता है :

वट्ट (वृत्त), मट्टिया (मृत्तिका), इड्ढि (ऋद्धि), वट्टय (वर्तक), नट्ट (नर्त), अट्ठ (अर्थ), छिड्ड (छिद्र), अड्ढ (अर्ध), सड्ढा (श्रद्धा)

(५) र्य=ज्ज : 'र्य' का प्रायः 'ज्ज' हो जाता है :

कज्ज (कार्य), अज्जा (आर्या), सुज्ज (सूर्य), मज्जाया (मर्यादा), पज्जंत (पर्यन्त), पज्जाय (पर्याय)

(६) अनुनासिक व्यंजन के पूर्व आनेवाला ऊष्म व्यंजन प्रायः महाप्राण 'ह्' में बदल जाता है और उन व्यंजनों का क्रम बदल जाता है :

(i) **श्न=ण्ह** : पण्ह (प्रश्न)

(ii) **ष्ण=ण्ह** : उण्ह (उष्ण)

(iii) **स्न=ण्ह** : अण्हाण (अस्नान)

(iv) **श्म=म्ह** : कम्हीर (कश्मीर)

(v) **ष्म=म्ह** : गिम्ह (ग्रीष्म)

(vi) **स्म=म्ह** : विम्हय (विस्मय)

प्राचीनतम प्राकृत में स्वरभक्ति के अपवाद

(i) उसिण (उष्ण)

(ii) नगिण (नग्न=नग्ग)

(iii) सिणाण (स्नान)

(७) महाप्राण 'ह्' के साथ आने वाले अनुनासिक का क्रम भी इसी प्रकार बदलता है :

वण्हि (वह्नि), मज्झण्ह (मध्याह्न), बम्हण (ब्राह्मण), बम्हा (ब्रह्मा) [पल्हाय (प्रह्लाद)]

(८) ज्ञ्=ण्ण्, न्न् : ज्ञ का प्रायः ण्ण अथवा न्न में परिवर्तन हो जाता है : सव्वन्न, सव्वण्ण (सर्वज्ञ), अणुण्णाय (अनुज्ञात), विण्णाण, विन्नाण (विज्ञान), परिन्ना, परिण्णा (परिज्ञा).

(९) अनुस्वार में बदलना :

कभी कभी संयुक्त व्यंजन में से एक का अनुस्वार में परिवर्तन हो जाता है :

पंख (पक्ष), गुंछ (गुच्छ), वयंस (वयस्य), वंक (वक्र), दंसण (दर्शन),. अंसु (अश्रु), जंप (जल्प), मणंसि (मनस्विन्)

(१०) स्वरभक्ति :

कभी कभी संयुक्त व्यंजन के बीच में स्वर का आगमन हो जाता है :

अ : कसण (कृष्ण), गरहा (गर्हा), रयण (रत्न)

इ : हरिस (हर्ष), सुरिय (सूर्य), भारिया (भार्या), अच्छरिय (आश्चर्य), आयरिय (आचार्य), वीरिअ (वीर्य), वरिस (वर्ष)

उ : छउम (छद्म), पउम (पद्म)

(११) अन्य परिवर्तन :

अपवाद के रूप में मिलने वाले कुछ अन्य परिवर्तन इस प्रकार हैं :

क्म =प्प	:	रुप्पिणी (रुक्मिणी), रुप्प (रुक्म)
त्त =ट्ट	:	पट्टण (पत्तन)
त्म =प्प	:	अप्पा (आत्मा), परमप्पा (परमात्मा)
त्र =त्थ	:	तत्थ (तत्र), अत्थ (अत्र)
त्व =च्च	:	चच्चर (चत्वर), तच्च (तत्त्व)
त्स =च्छ	:	वच्छ (वत्स), उच्छाह (उत्साह)
ध्व =ज्झ	:	सज्झस (साध्वस)
प्स =च्छ	:	अच्छरा (अप्सरा), जुगुच्छा (जुगुप्सा)
म्र =म्ब	:	अम्ब (आम्र), तम्ब (ताम्र)
य्य =ज्ज	:	सेज्जा (शय्या), जज्ज (जय्य)
र्य =ल्ल	:	पल्लत्थ (पर्यस्त), पल्लाण (पर्याण)
ह्म =म्भ	:	बंभण (ब्राह्मण)
ह्य =ज्झ	:	गुज्झ (गुह्य), सज्झ (सह्य)
ह्व =ब्भ	:	विब्भल (विह्वल).

(३) संधि

प्राकृत भाषा में संधि की शिथिलता और अनियमितता पायी जाती है । उसमें विकल्प से संधि होती है ।

(१) मध्यवर्ती व्यंजन का लोप होने पर शेष रहे हुए स्वर की संधि प्रायः नहीं होती है :

णअर (नगर), विआर (विकार), नई (नदी), पउर (प्रचुर), आएस (आदेश), विएस (विदेश), रिउ (रिपु) विओग (वियोग), पओजण (प्रयोजन)

[अपवाद : अंधार (अंधआर-अन्धकार) सूमाल (सुउमाल-सुकुमार), आअ (आअअ-आगत), मोर (मऊर-मयूर), थेर (थइर-स्थविर)]

(२) नाम-विभक्ति और क्रिया-प्रत्यय के लिए प्रयुक्त स्वरों में भी प्रायः सन्धि नहीं होती है :

सव्वओ (सर्वतः), रमाए (रमया), णयरीओ (नगर्यः), हसइ (हसति), गच्छउ (गच्छतु), करिअव्व (कर्तव्य)

[अपवाद : काही (काहिइ-करिष्यति), होही (होहिइ-भविष्यति)]

(३) दो पदों के बीच में विकल्प से संधि होती है :

तस्स उवएसेण, तस्सोवएसेण (तस्य+उपदेशेन)

(४) समास में भी विकल्प से संधि होती है :

पव्वयआरोहण, पव्वयारोहण (पर्वत+आरोहण)

(५) प्रथम पद के अंतिम स्वर का विकल्प से लोप करके दूसरे पद के प्रारंभिक स्वर के साथ संधि की जाती है :

हसामि अहं, हसामहं; तुब्भे इत्थ, तुब्भित्थ.

२. विविध प्राकृत भाषाएँ

(क) महाराष्ट्री

अभी तक प्राकृत भाषा के जिन लक्षणों का परिचय दिया गया है वे प्रायः महाराष्ट्री प्राकृत के लक्षण हैं । प्राकृत का सामान्य अर्थ महाराष्ट्री प्राकृत ही चलता है और सरलता के लिए इसी प्राकृत का परिचय प्रथम दिया गया है । अन्य प्राकृतों से संबंधित मुख्य विशेषताएँ यहाँ पर दी जा रही हैं तो जो इन्हें महाराष्ट्री से अलग करती हैं । पद-रचना का व्यवस्थित ब्यौरा आगे दिया गया है जिसमें Middle Indo-Aryan के मान्य तीनों स्तरों पालि, प्राकृत और अपभ्रंश का समावेश किया गया है ।

वैसे प्राकृत भाषाओं (M. I. A. Languages) का विकास-क्रम अनुमानतः इस प्रकार माना गया है : पालि, पैशाची, चूलिका पैशाची, मागधी, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री एवं अपभ्रंश । परंतु सुविधा और सुबोधता की दृष्टि से यहाँ पर उनका क्रम बदल दिया गया है ।

(ख) शौरसेनी

महाराष्ट्री प्राकृत का आधार बनाकर शौरसेनी प्राकृत की अन्य विशेषताएँ इस प्रकार दर्शायी जा सकती हैं :

(१) मध्यवर्ती व्यंजन द् ओर ध् का प्रायः लोप नहीं होता है : मद, वेध ।

(२) मध्यवर्ती व्यंजन त् ओर थ् क्रमशः द् और ध् में बदल जाते हैं : रअद (रजत), कधा (कथा) ।

(३) र्य् का य्य् में परिवर्तन होता है : सुय्य (सूर्य), अय्य (आर्य) ।

(४) कुछ अपवादों के होते हुए भी क्ष् प्रायः क्ख् में बदलता है : कुक्खि (कुक्षि), इक्खु (इक्षु) । अपवाद क्ष्=च्छ् : अक्खि, अच्छि ।

(५) कभी कभी न्त् का न्द् में परिवर्तन पाया जाता है :

हन्द (हन्त), सउन्दला (शकुन्तला) ।

(६) पंचमी एक वचन के विभक्ति प्रत्यय दो और दु (तः) हैं : जिणादो, जिणादु ।

(७) तद् और एतद् सर्वनाम के सप्तमी एक वचन के रूप तस्सिं और एदस्सिं भी पाये जाते हैं ।

(८) वर्तमान काल में तृतीय पुरुष एक वचन के लिए दि और दे (ति, ते) प्रत्यय लगते हैं : रमदि, रमदे ।

(९) आज्ञार्थ तृतीय पुरुष एक वचन का प्रत्यय दु (तु) है : गच्छदु

(१०) विधिलिंग प्रथम पुरुष एक वचन के लिए ए और एअं प्रत्यय लगाये जाते हैं : वट्टे, वट्टेअं ।

(११) भविष्य काल के लिए स्सि लगाकर पुरुष-वाचक प्रत्यय लगाये

जाते हैं : हसिस्सिदि, करिस्सिदि ।

(१२) हेत्वर्थक कृदन्त का प्रत्यय दुं (तुम्) है : कादुं, भणिदुं ।

(१३) विद्यर्थ कृदन्त प्रत्यय **अव्व** के बदले में **दव्व** (तव्य) : भविदव्व, हसिदव्व और ताव (तावत्) के बदले में दाव रूप चलता है।

(१४) सम्बन्धक भूत कृदन्त के प्रत्यय **इय** ओर **दूण** हैं : पढिअ भविय, कादूण । कभी कभी **त्ता** और **च्चा** प्रत्यय भी मिलते हैं : जाणित्ता, किच्चा । **कृ** और **गम्** धातुओं के विशेष रूप **कडुअ** और **गडुअ** हैं ।

(१५) कर्मणि प्रयोग के लिए **इअ** लगाया जाता है : हसिअदि, गमिअदि ।

(१६) भू धातु प्रायः हो में नहीं बदलता । उसके रूप इस प्रकार मिलते हैं : भवदि, भोदु, भविस्सिदि, भोदुं, भविअ, भोदूण, भोत्ता, भविदव्व, इत्यादि ।

(ग) मागधी

शौरसेनी प्राकृत को आधार बनाकर मागधी प्राकृत की अन्य विशेषताएँ इस प्रकार दर्शायी जा सकती हैं ।

(१) 'य्' का 'ज्' में परिवर्तन नहीं होता है ।

(२) ज् का य् में परिवर्तन होता है : यणवद (जनपद)

(३) र् का ल् हो जाता है : णल (नर) लायिद (राजित)

(४) स् और ष् का प्रायः श् में परिवर्तन होता हैः शालश (सारस), घोश (घोष)

(५) द्य, र्ज्, र्य=य्य : अय्य (अद्य), दुय्यण (दुर्जन), अय्य (आर्य)

(६) ज्ञ, ञ्ज, ण्य्, न्य=ञ्ञ् : पञ्ञा (प्रज्ञा), अञ्ञलि (अञ्जलि), पुञ्ञ (पुण्य), अञ्ञ (अन्य)

(७) क्ष् = श्क् : लश्कश (राक्षस), यश्क (यक्ष), पश्क (पक्ष)

(८) च्छ्=श्च् : गश्च (गच्छ)=(९) ट्ट=स्ट् : पस्ट (पट्ट)

(१०) र्थ्=स्त् : शस्त (सार्थ) (११) स्थ्=स्त् : उवस्तिद (उपस्थित)

(१२) ष्क्=स्क् : शुस्क (शुष्क) (१३) ष्ख्=स्ख् : धनुस्खंड (धनुष्खंड)

(१४) ष्ट्=स्ट् : कस्ट (कष्ट)

(१५) कुछ संयुक्त व्यंजनों में ऊष्म व्यंजन उपलब्ध हैं :

पश्चिम, निश्चल, पश्चादो, पुष्टि, चिष्ठ, हस्त, बुहस्पदि, विस्मय

(१६) 'अ' कारान्त पुल्लिंग प्रथमा एक वचन का विभक्ति प्रत्यय 'ए': रामे (रामः) ।

(१७) षष्ठी एक वचन का एक अन्य विभक्ति प्रत्यय '**आह**' : कामाह (कामस्य)

(१८) षष्ठी बहुवचन का एक अन्य विभक्ति प्रत्यय : **आहँ** : शयणाहँ (शयनानाम्)

(१९) सप्तमी एक वचन के अन्य विभक्ति प्रत्यय म्सि और आहिं : गेहंसि (गृहे), पुत्ताहिं (पुत्रे), पवणाहिं (पवने)

(२०) अस्मद् सर्वनाम का प्रथमा एक वचन और बहुवचन का रूप हगे (अहम्, वयम्) मिलता है ।

(२१) **युष्मद् सर्वनाम का षष्ठी एक वचन का रूप** तव (तव) मिलता है ।

(२२) तद् और एतद् के सप्तमी एक वचन के रूप **तर्शिंश** और एदर्शिंश (तस्मिन्, एतस्मिन्) मिलते हैं ।

(२३) स्वार्थे 'क'='**अ**' का अधिक प्रयोग मिलता है ।

(२४) कारक विभक्ति का कभी लोप हो जाता है ।

(घ) अर्धमागधी

अर्धमागधी का दूसरा नाम आर्ष प्राकृत है । यह श्वेताम्बर जैन आगम साहित्य की भाषा है जिसका कुछ अंश प्राचीनतम प्राकृत साहित्य माना जाता है । इसके लक्षण इस प्रकार हैं :

(१) मध्यवर्ती व्यंजन का लोप होने पर 'य' अथवा 'त्' श्रुति पायी जाती है:

सेणित, सेणिय (श्रेणिक), लोय (लोक), कूणित (कूणिक)

(२) मध्यवर्ती ग् प्रायः यथावत् रहता है : नगरी, आगम, भगवं, भगिणी ।

(३) मध्यवर्ती क् का ग् भी होता है :

एग (एक), असोग (अशोक), लोग (लोक), सावग (श्रावक) ।

(४) मध्यवर्ती त् और द् वैकल्पिक यथावत् रहते हैं :

णेता, णेया: भेद, भेय (नेता, भेद)

(५) प्रारंभिक और मध्यवर्ती न् का वैकल्पिक ण् होता है :

नगर, णगर, अनल, अणल, सव्वन्नु, सव्वण्णु (सर्वज्ञ)

(६) मध्यवर्ती भ् और य् की प्रायः यथावत् स्थिति रहती है :

लाभ, सोभा, विभव, पयोग

(७) मध्यवर्ती प् कभी कभी व् या म् में बदलता है :

सुविण, सुमिण (स्वप्न), नीव, नीम (नीप)

(८) मध्यवर्ती र् का कभी कभी ल् हो जाता है :

कलुण (करुण), चलण (चरण)

(९) कुछ शब्दों में प्रारंभिक तालव्य व्यंजन का दन्त्य व्यंजन में परिवर्तन

मिलता हैं : तिगिच्छ (चिकित्सा), दुगुंछ (जुगुप्सा)

(१०) **यथा** और **यावत्** शब्दों में प्रारंभिक य का **अ** मिलता है :

अहक्खाय (यथाख्यात), अहाजात (यथाजात), अहासुहं (यथासुखम्), आवकहा (यावत्कथा)

(११) **संयुक्त रूप में या रेफ के साथ आने वाले दन्त्य व्यंजन अधिकतर मूर्धन्य व्यंजन में बदल जाते हैं :**

पट्टण (पत्तन), कविट्ठ (कपित्थ), उट्ठा (उत्था), नट्टग (नर्तक), अट्ट (आर्त), नियंठ (निर्ग्रन्थ), सड्ढा (श्रद्धा)

(१२) कभी कभी म् संधि-व्यंजन के रूप में मिलता है :

निरयंगामी (नरकगामी), एगमेअ (एकैक), गयमादि (गज+आदि)

(१३) एव के पूर्व में **अम्** का **आम्** भी होता है : खिप्पामेव (क्षिप्रम्+एव), एवामेव, तामेव, पुव्वामेव, जेणामेव, तेणामेव

(एवम्+एव), (तम्+एव), (पूर्वम्+एव), (जेणं+एव), (तेणं+एव)

(१४) **पुल्लिंग अ कारान्त के लिए प्रथमा एक वचन में ए अथवा ओ विभक्ति का प्रयोग होता है : देवे, देवो (देवः), से, सो (सः), तुमे, एसे, इमे, के, एगे, आदि ।**

(१५) त-कारान्त नाम शब्दों में प्रथमा एक वचन के लिए त् का लोप होकर विभक्ति प्रत्यय के रूप मे अनुस्वार का प्रयोग होता है :

जाणं (जानन्), विज्जं (विद्वान्), चक्खुमं (चक्षुमान्)

(१६) तृतीया एक वचन में कुछ शब्दों के रूप इस प्रकार मिलते हैं :

मणसा (मनसा), वयसा (वचसा), कायसा (कायेन), जोगसा (योगेन), णियमसा, पयोगसा, भयसा, बलसा, कम्मुणा (कर्मणा), इत्यादि ।

(१७) अ कारन्त पुलिंग में चतुर्थी एक वचन के लिए **आए** विभक्ति भी लगायी जाती है : देवाए, जिणाए, अट्ठाए

(१८) पुंलिंग में सप्तमी एक वचन का विभक्ति प्रत्यय **अंसि** एवं **स्सि** (स्मिन्) भी मिलता है :

पुत्तंसि, अग्गिसि, वाउंसि, भित्तिंसि, धेणुंसि, ममंसि, तुमंसि, तंसि, एयंसि, इमंसि, एगंसि, अस्सि, कस्सि, तस्सि, आदि ।

(१९) अ कारान्त पुंलिंग में सम्बोधन के एक वचन में **आ** विभक्ति भी मिलती है : हे देवा, हे गोयमा ।

(२०) आज्ञार्थ द्वितीय पुरुष एक वचन के लिए आहि (धि) प्रत्यय भी मिलता है : वट्टाहि, गेण्हाहि, विरहाहि ।

(२१) भविष्य काल के लिए प्रथम पुरुष एक वचन के प्रत्यय **इस्सं** और **हं** (ष्यम्) मिलते हैं : करेस्सं, करिस्सं, काहं, दाहं, पाहं ।

(२२) भूतकाल के लिए अनेक प्राचीन प्रत्ययों का उपयोग अर्धमागधी में चलता रहा । फिर भी पुरुष और वचन सम्बन्धी भेद मिटता गया और निम्नलिखित प्रत्ययों का उपयोग प्रायः सभी पुरुषों और वचनों के लिए होता है ।

(i) **आसी, आसि (आसीः) : वयासी, वयासि (अवादीः), कासि (अकार्षीः)**

(ii) **इत्थ, इत्था, त्था (इष्ट) : विहरित्था, सेवित्था, होत्था, लभित्थ, पहारेत्थ**

(iii) अ(–)इस्सं (ष्यम्) : प्रथम पुरुष एक वचन :
अकरिस्सं (अकार्षम्)

(iv) अ(–) आसि : द्वितीय पुरुष एक वचन :
अकासि, अकासी (अकार्षीः)

(v) सी, ही (सीत्) : तृतीय पुरुष एक वचन :
कासी, कासि, ठासी, पासी, होसी
काही, ठाही, पाही

(vi) ईअ (इत्) : तृतीय पुरुष एक वचन :

वंदीअ, हसीअ, करीअ, गेण्हीअ, हुवीअ

(vii) इंसु, अंसु (इषुः) : तृतीय पुरुष बहु वचन :

गच्छिंसु, पुच्छिंसु, आहंसु

(२३) कर्मणि-भूत-कृदन्त ड : ऋकारान्त धातुओं में क.भू.कृ. त का ड हो जाता है : कड (कृत), मड (मृत),संवुड (संवृत), आहड (आहृत)

(२४) हेत्वर्थक कृदन्त :

(i) इत्तए, एत्तए, त्तए (-तवे, -तवै, *त्वायै) : गमित्तए, पुच्छित्तए, करेत्तए, होत्तए

(ii) इत्तु, ट्टु : सुणित्तु, जाणित्तु, कट्टु

(२५) सम्बन्धक भूत कृदन्त के लिए अनेक प्राचीन प्रत्यय मिलते हैं :

(i) इत्ता, एत्ता, त्ता (त्वा):करित्ता, आगमेत्ता, होत्ता, गंता (गत्वा)

(ii) च्चा (त्या) : होच्चा (भूत्वा), पेच्चा (प्रेत्य), किच्चा (कृत्वा), सोच्चा (श्रुत्वा)

(iii) इत्ताणं, एत्ताणं (त्वा+न) : पासित्ताणं, पासेत्ताणं, लहित्ताणं, लहेत्ताणं

(iv) च्चाण, च्चाणं (त्वा+न) : नच्चाण, नच्चाणं (ज्ञात्वा)

(v) इत्तु, ट्टु (त्व) : वंदित्तु, जाणित्तु, कट्टु (कृत्वा)

(vi) इय, इया, ए (य, या) : वियाणिय, दुरुहिय, पासिया, परिजाणिया अणुपालिया, आयाए (आदाय), परिन्नाए (परिज्ञाय)

(vii) याण, याणं (*या+न): लहियाण (लब्ध्वा), आरुसियाणं (आरुष्य)

नोट - इस भाषा के संबंध में जो नयी विशेषताएँ प्रकाश में आयी हैं उनके लिए अन्त में जोडा गया परिशिष्ट देखिए ।

(ङ) पालि

महाराष्ट्री प्राकृत में होने वाले ध्वनि-सम्बंधी परिवर्तनों को आधार बनाकर पालि भाषा की विशेषताएँ इस प्रकार दर्शायी जा सकती हैं ।

(१) स्वर-संबंधी परिवर्तन प्रायः प्राकृत के समान ही होते हैं ।

(२) पालि में अन्य व्यंजनों के अतिरिक्त 'ळ' और 'ळ्ह' भी पाये जाते हैं ।

(३) अनुनासिक व्यंजन ङ् और ञ् का सजातीय अन्य व्यंजन के साथ संयुक्त रूप में और दो ञ् का एक साथ प्रयोग होता है :

किङ्कर, सङ्ख, अङ्ग, सङ्घ, पञ्च, मञ्जरी, वञ्झा, (वन्ध्या), पञ्ञा (प्रज्ञा)

(४) ञ् का स्वर के साथ भी प्रयोग होता है : ञाति (ज्ञाति).

(५) 'न्' का प्रायः 'ण्' में परिवर्तन नहीं होता है :

नगर, वदन, नन्दन, मन, नाग

(६) प्रारंभिक 'य्' का प्रायः 'ज्' नहीं होता है :

योग, यक्ख (यक्ष), येन, यदा

(७) स् का (प्राकृत की तरह) ह् में परिवर्तन नहीं होता हैं ।

(८) र् का ल् अनेक बार मिलता है :

लोम (रोम), तलुण (तरुण), लुक्ख (रुक्ष)

(९) मध्यवर्ती अल्प-प्राण व्यंजनों का लोप, 'य' श्रुति और महाप्राण व्यंजनों का 'ह्' प्रायः नहीं होता है । यही मुख्य प्रवृत्ति पालि को प्राकृत से अलग करती है ।

कुछ अपवाद इस प्रकार हैं :

नियं, निज, खायित, ('य' श्रुति युक्त), खादित;, लहु, लघु;, रुहिर, रुधिर ।

(१०) 'ड' और 'ढ' के स्थान पर 'ळ' और 'ळ्ह' भी पाये जाते हैं :
दाळिम (दाडिम), पीळा (पीडा), गळ्ह (गढ), आसाळ्ह (आषाढ)

(११) ट् का कभी कभी ळ् हो जाता है :

खेळ (खेट), लाळ (लाट)

(१२) ल का कभी कभी ळ हो जाता है :

पळाश (पलाश), चोळ (चोल), माळ (माल)

(१३) 'प्रति' का 'पटि' हो जाता है :
पटिविरत (प्रतिविरत), पटिजानाति (प्रतिजानाति), पटिग्गहण (प्रतिग्रहण)

(१४) अपवाद के रूप में मध्यवर्ती व्यंजनों के परिवर्तन इस प्रकार मिलते हैं :

व श्रुतिः सुव (शुक), आवुध (आयुध), कसाव (कसाय)
त, थ=द, ध : रुद (रुत), गधित (ग्रथित)
द, ध=त, थ : मुतिङ्ग (मृदङ्ग), पिथीयति (पिधीयते)
क्वचित् लोप : आवेणिय, कोसिय (क); निय(ज); सायति (स्वादते), खायित (खादित) (द) ।

(१५) अपवाद के रूप में प्रारंभ में संयुक्त व्यंजन अन्तस्थ के साथ इस प्रकार मिलते हैं :

(अ) त्यासु, व्यञ्जन, व्याकरण, व्याकुल, व्यापार, व्यापाद

(ब) ब्रह्म, ब्राह्मण, ब्रूति

(स) क्वचि (क्वचित्), क्वं, द्वार, द्विधा, द्वे, त्वं, स्वाक्खात (स्वाख्यात), स्वे (श्वस्)

(१६) व्य का वैकल्पिक ब्य पाया जाता है :

ब्यासत्त (ब्यासक्त), ब्यत्त (व्यक्त), ब्यापाद (व्यापाद), ब्यञ्जन (व्यञ्जन), ब्यूह (व्यूह)

(१७) संयुक्त व्यंजन के पहले दीर्घ मात्रा अपवाद के रूप में यथावत मिलती हैं :

स्वाक्खात (स्वाख्यात), बाल्य, दात्त (दात्र). ब्राह्मण

(१८) संयुक्त व्यंजनों का समीकरण प्रायः प्राकृत की तरह ही होता है।

परंतु कुछ अपवाद् इस प्रकार मिलते हैं :

(अ) स्पर्श व्यंजन के साथ अन्तस्थ :

सक्य (शाक्य), अग्यागार (अग्न्यागार) आरोग्य, निग्रोध (न्यग्रोध) अमुत्र, तत्र, चित्र, भद्र, करित्वा, सुत्वा, चयित्वा, उक्लाप (उत्क्लाप)

(ब) अन्तस्थ के साथ अन्तस्थ :

माल्य, कल्याण

(स) अनुनासिक के साथ अन्तस्थ :

अन्वय, अन्वेति, कम्य (काम्य)

(द) कभी य् के द्वित्वकरण के रूप में :

देय्य (देय), गेय्य (गेय़), सेय्य (श्रेयस्)

(१९) संयुक्त व्यंजन संबंधी अन्य परिवर्तन इस प्रकार हैं :

(अ) ज्ञ, न्य, ण्य=ञ्ञ : पञ्ञा (प्रज्ञा), अञ्ञा (आज्ञा), कञ्ञा (कन्या), अञ्ञ (अन्य), अरञ्ञ (अरण्य), पुञ्ञ (पुण्य)

(ब) र्य=य्य : अय्य (आर्य), निय्याति (निर्याति)

(स) श्न=ञ्ह : पञ्ह (प्रश्न)

(द) जहाँ जहाँ पर प्राकृत में व्व' होता है वहाँ पर पालि में 'ब्ब' हो जाता है :

सब्ब (सर्व), पुब्ब (पूर्व), पब्बत (पर्वत), तिब्ब (तीव्र), परिब्बाजक (परिव्राजक), उब्बिग्ग (उद्विग्न), उब्बट्टन (उद्वर्तन)

(२०) अपवाद के रूप में कुछ परिवर्तन इस प्रकार हैं ।

द्य=य्य : उय्यान (उद्यान)
म्भ=म्ह : सुम्हति (शुम्भति)
म्भ=म्ब : कुम्ब (कुम्भ)
म्व=म्ब : सम्बाहन (संवाहन)

(२१) ऊष्म व्यंजन के साथ अनुनासिक म् की स्थिति :

अस्माकं, कस्मीर, रस्मि, भस्म, उस्मा, कस्मा (कस्मात्), तस्मिं (तस्मिन्)

(२२) महाप्राण के साथ म् की स्थिति :

ह्म : ब्राह्मण, ब्रह्म

(२३) ह्य=य्ह : सय्ह (सह्य), आरुय्ह (आरुह्य), मय्हं (मह्यम्), मुय्हति (मुह्यति)

ह्व=व्ह : जिव्हा (जीह्वा), अव्हान (आह्वान)

(च) पैशाची

(१) यह भाषा संस्कृत और पालि के अति निकट है ।

(२) इसमें शब्द के आदि के 'य' का 'ज' में परिवर्तन नहीं होता है।

(३) इसमें मध्यवर्ती अल्पप्राण व्यंजनों का प्रायः लोप नहीं होता है।

(४) इसमें मध्यवर्ती महाप्राण व्यंजनों का प्रायः 'ह्' में परिवर्तन नहीं होता है ।

(५) इसमें तालव्य व्यंजनों का प्रायः मूर्धन्यीकरण नहीं होता है ।

(६) इसमें अघोष व्यंजन का प्रायः घोष नहीं होता है ।

(७) इसमें मुख्य परिवर्तन प्रायः इस प्रकार से होते हैं :

(अ) ण=न् : गुन (गुण), [न का ण में परिवर्तन नहीं होता है : कनक (कनक)]

(ब) श्, ष्=स् : श् और ष् का स् में परिवर्तन होता है ।

(स) द्=त् : मतन (मदन), तेव (देव), तामोतर (दामोदर), [भगवती (भगवती), सत (शत)]

(द) टु=तु : कुतुम्बक (कुटुम्बक)

(क) ल=ळ : सीळ (शील), कुळ (कुल)

(ख) दृ=ति : यातिस (यादृश)

(ग) हृदय के लिए हितपक शब्द चलता है ।

(घ) ज्ञ्, न्य् और ण्य् का ञ्ञ् हो जाता है :

पञ्ञा (प्रज्ञा), कञ्ञा (कन्या), पुञ्ञ (पुण्य)

(च) इव के लिए पिव का प्रयोग होता है ।

(छ) वयम् के लिए अप्फे का प्रयोग होता है ।

(ज) अ कारान्त पंचमी एक वचन में आतो और आतु विभक्ति प्रत्यय लगाये जाते हैं :

जिनातो, जिनातु (जिनात्), तूरातो (दूरात्)

(झ) भविष्य काल के लिए 'एय्य' प्रत्यय लगाया जाता है :

हुवेय्य (भविष्यति)

(ट) संबंधक भूत कृदन्त 'त्वा' के लिए 'तून' का प्रयोग :

पठितून (पठित्वा), गंतून (गत्वा)

(ठ) 'ष्ट्वा' के लिए 'त्थून' और 'द्धून' हो जाता है :

तत्थून, तद्धून (दृष्ट्वा)

(ड) कर्मणि प्रयोग का प्रत्यय 'इय्य' है :

पठिय्यते (पठ्यते), (हसिय्यते) (हस्यते), गिय्यते (गीयते)

(छ) चूळिका पैशाची

यह भाषा पैशाची भाषा का ही एक प्रभेद है ।

(१) इसकी विशेषता यह है कि इसमें घोष ध्वनियाँ अघोष हो जाती हैं :

नकर (नगर), किरि (गिरि), मेख (मेघ), खम्म (धर्म), वक्ख (व्यघ्र), राचा (राजा), चीमूत (जीमूत), निच्छर (निर्झर), तटाक (तडाग), ठक्का (ढक्का), मतन (मदन), तामोतर (दामोदर), मथुर (मधुर), पालक (बालक), फकवती (भगवती)

(२) र् का ल् में परिवर्तन वैकल्पिक है : लुद्द (रुद्र) ।

(ज) अपभ्रंश

अपभ्रंश भाषा मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं (प्राकृत भाषाओं) के अंतिम चरण की भाषा रही है । समय की गति के साथ जन-भाषा में विकास होता रहा और देश-प्रदेश के अनुसार अनेक अपभ्रंश बोलियाँ पनपीं । इस भाषा में विभक्ति, काल, भाव एवं कृदन्त सम्बन्धी प्रत्ययों में दूरगामी परिवर्तन आये इसीलिए उनकी बहुलता व विविधता पायी जाती है ।

अपभ्रंश भाषा 'उ'कार और 'ह'कार बहुल भाषा बन गयी । इसमें नाम विभक्तियाँ घट कर प्रायः तीन ही रह गयीं-

(१) प्रथमा के समान द्वितीया और संबोधन, (२) तृतीया और सप्तमी की समानता और (३) चतुर्थी एवं पंचमी षष्ठी के समान । 'अ'कारान्त प्रातिपादिकों की प्रमुखता हो गयी । स्त्रीलिंगी प्रातिपादिक भी 'अ'कारान्त बन गये । इसमें धातुओं के रूपों में भी कमी आयी । लिंग-व्यत्यय की वृद्धि हुई । आगे चलकर विभक्ति प्रत्ययों का स्थान संबंधवाची शब्दों (Post Positions) ने ले लिया और यही विशेषता इस भाषा को यौगिक से अयौगिक भाषा की तरफ बढाने लगी जो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का प्रमुख लक्षण है ।

इस भाषा की विशेषताएँ निम्न प्रकार से दर्शायी जा सकती हैं :-

(१) ऋकार की कभी कभी उपलब्धि :
तृणु (तृण), गृण्हंति (गृह्णन्ति), गृण्हइ (गृह्णाति), सुकृदु (सुकृतः)

(२) एँ और ऑ : ह्रस्व एँ और ऑ के उपयोग की वृद्धि हुई और ये क्रमशः 'इ' और 'उ' में भी बदलने लगे :

(i) इक्क (ऍक्क-एक), पिच्छिवि (पेंच्छिवि-प्रेक्ष्य), सुक्ख (सोॅक्ख-सौख्य), जुव्वण (जोॅव्वण-यौवन), उड्डण्ण

(ऑइण्ण-अवतीर्ण)

(ii) विभक्ति प्रत्यय : एण=ऍण=इण, एहिं=ऍहिं=इहिं, ए=ऍ=इ, ओ=ऑ=उ, हो=हॉ=हु,

(३) अन्तिम 'ए' और 'ओ' को भी 'इ' और 'उ' में बदला जाने लगा :

खणि (खणे-क्षणे), देउ (देवो-देवः), परु (परो-परः)

(४) ह्रस्व और दीर्घ स्वरों में अनियमितता आ गयी :

काहाणउ, कहाणउ (कथानक), वसिकय, वसीकय (वशीकृत), पईसइ, पइसइ (प्रविशति)

(५) अंतिम दीर्घ स्वर ह्रस्व बना दिया जाने लगा :

कण्ण (कण्णा-कन्या), सीय (सीया-सीता), संझ (संझा-सन्ध्या), माल (माला)

(६) एक स्वर के बदले में दूसरे स्वर का प्रयोग बढने लगा : पट्ठि, पुट्ठि (पृष्ठ), पिक्क (पक्व), विणु (विना), अप्पुणु (आत्मनः), लिह, लीह (रेखा), बाहु, बाह (बाहु), वेणु (वीणा)

(७) कभी कभी अघोष व्यंजन घोष होने लगे :

विच्छोहगरु (विक्षोभकरः), सुघ (सुख), कधिद (कथित), सबध (शपथ), सभल (सफल)

(८) प्राकृत की 'य' श्रुति के बदले में 'व' श्रुति का भी आगमन हुआ : मंदोवरी (मन्दोदरी), उवर (उदर), उवधि (उदधि), थोव (स्तोक), जुवल (युगल), सहोवर (सहोदर)

(९) कभी कभी 'म्'='व्' :

हणुव (हनुमत्), पणवेप्पिणु (प्रणम्य), धरेवि (धरेमि), उज्जव (उद्यम)

(१०) कभी कभी 'म'='वँ' :

कवँल (कमल), भवँर (भ्रमर), आवँलअ (आमलक), जिवँ (जिम-यथा), तिवँ (तिम-तथा)

(११) कभी कभी 'व्'='म्' :

मि (वि-अपि), समरी (शवरी), पिहिमि (पृथ्वी)

(१२) संयुक्त व्यंजनों में कभी कभी 'र्' यथावत् रहने लगा और कभी कभी 'र्' का आगमन भी होने लगा :

प्रिय, पिय; प्रमाणिअ, पमाणिअ; ध्रुवु, ध्रुबु; व्रास, वास (व्यास); वागरण, व्रागरण (व्याकरण); त्रं (तद्, त्यद्)

(१३) मध्यवर्ती संयुक्त व्यंजनों में से एक का लोप होकर उसके पहले आने वाले ह्रस्व स्वर को दीर्घ बनाने की प्रवृत्ति अधिक बढ़ गयी :

तासु (तस्य), कासु (कस्य), साचउ (सत्यम्)

(१४) मध्यवर्ती व्यंजन के द्वित्वकरण की प्रवृत्ति भी अधिक बढ गयी : उप्परि (उपरि), अवयण्णिय (अवगणित), गोत्तम (गौतम), अण्णेक्क (अनेक), उज्जुअ (ऋजुक)

(१५) ष्म=म्भ='ग्रीष्म' के लिए 'गिम्भ' भी मिलता हैं ।

(१६) 'अ' कारान्त नाम शब्दों को (उसमें जुडने बाले स्वार्थे 'अ' के साथ संधि करके) 'आ'-कारान्त बनाया जाने लगा : कुसुमा (कुसुमअ-कुसुम), पदीवा (पदीवअ-प्रदीप), घोडा (घोडअ-घोटक)

(१७) मध्यवर्ती व्यंजन के लोप से दो समान स्वरों के पास में आने पर उनकी संधि कर के दीर्घ स्वर बनाना :
भंडार (भंडाआर-भाण्डागार), पिआर (पिअअर-प्रियतर), लोहार (लोहआर-लोहकार), पीहर (पिइहर-पितृगृह)

(१८) जिन शब्दों के अन्त में 'अय' आता है उन्हें भी 'आ' (अक=अय=अअ=आ) में बदला जाने लगा :

गवेसा-गवेसअ (गवेषक), जिणाला-जिणालअ (जिनालय), भडारा=भडारअ (भडारय-भट्टारक)

(१९) कभी कभी 'अ' कारान्त सिवाय अन्य स्वरान्त शब्दों को भी 'अ' कारान्त बनाया जाने लगा:

(i) पसव (पशु)

(ii) स्वार्थे 'अ', 'य' (क) जोडकर : हसंतिय (हसन्ती)

(२०) कई नये नये सार्वनामिक रूपों का प्रादुर्भाव हुआ :

हउं (अहम्), महारउ (मम), पइं (त्वाम्, त्वया, त्वयि) तुम्हारउ (युष्माकम्), अम्हारउ (अस्माकम्), एहु (एषः), कवण (किम्), इत्यादि ।

(२१) स्वार्थिक प्रत्यय 'ड' और 'ल' का प्रयोग बढ़ने लगा :

रुक्खडु (वृक्षः), गोरडु (गौरः), देसडा (देशः), निद्दडी (निद्रा), जेवडु (यावत्), तेवडु (तावत्) सरीरडउ (शरीरकः), वंकुडउ (वक्रकः), संदेसडउ (संदेशकः), एकल (एक्क), पत्तल (पत्र), अग्गल (अग्र), नग्गल (नग्न)

(२२) अनुरणनात्मक शब्दों की वृद्धि होने लगी :

गुमुगुमुगुमंत, टणटणटणंत, ललललंति, धगधगधगंति, जिगिजिगिजिगंत

३. पदरचना : नाम-प्रकरण

प्रारंभिक

१. प्राकृत भाषा में द्विवचन का लोप हो गया है, अतः इसमें एक वचन और बहुवचन ही प्रयुक्त होते हैं ।

२. इसमें तीनों लिंगों का प्रयोग होता है : पुंलिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग ।

कुछ शब्दों में लिंग-व्यत्यय भी मिलता है और यह परिवर्तन क्रमशः परिवर्धित हुआ है ।

(i) नपुंसक लिंग के बदले में पुंलिग :-

धम्मो (धर्मम्), मणो (मनस्), रयणो (रत्नम्), रूवा (रूपाणि), (दोनों प्रकार के प्रयोग भी मिलते हैं) :

मित्तं, मित्तो, धम्मं, धम्मो, मणं, मणो, वणं, वणो, अत्थं, अत्थो, बलं, बलो, ठाणं, ठाणो

(ii) पुंलिग के बदले में स्त्रीलिंग :-

अद्धा (अध्वन्), उम्हा (उष्मन्), अंजली (अञ्जलि)

पुंलिग के बदले में नपुंसकलिंग :-

हेऊइं (हेतवः), सालिणि (शालयः)

(iii) स्त्रीलिंग के बदले मे पुंलिग :-

पाउसो (प्रावृष्), सरओ (शरद्)

३. चतुर्थी विभक्ति का प्रायः लोप हो गया है और इसके बदले में षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है ।

४. प्राकृत भाषा में निम्न प्रकार से व्यंजनान्त शब्द प्रायः स्वरान्त बन गए हैं और उनमें स्वरान्त शब्दों की तरह ही विभक्ति प्रत्यय लगाए जाते हैं ।

(i) अन्तिम व्यंजन के लोप द्वारा, जैसै-

तव (तपस्), हत्थि (हस्तिन्), विज्जु (विद्युत्);

(ii) अन्तिम व्यंजन में स्वरागम द्वारा, जैसे-

गिरा (गिर्), वाया (वाच्), णिसा (निश्), तया (त्वच्);

(iii) अथवा अन्तिम व्यंजन के लोप एवं स्वरागम द्वारा, जैसे-

अच्छरा (अप्सरस्), परिसा (परिषद्), आवइ (आपद्)

(iv) व्यंजनान्त शब्दों के कुछ प्राचीन रूप अवशेष के रूप में मिलते हैं जिनकी संख्या क्रमशः घटती रही है ।

५. सभी व्यंजनान्त शब्द प्रायः स्वरान्त बनने लगे, विभक्ति प्रत्ययों की बहुलता काफी घटती गयी और 'अ' कारान्त शब्द के विभक्ति-प्रत्यय ही मुख्य प्रत्यय बनने लगे । इस कारण से नाम-शब्दों की पद-रचना में पर्याप्त सरलता आ गयी ।

६. प्राकृत एवं पालि भाषाओं के जो नाम-रूप अब दिए जा रहे हैं उससे स्पष्ट होगा कि पुलिंग 'अ' कारान्त एवं स्त्रीलिंग 'आ' कारान्त के विभक्ति प्रत्ययों को जान लेने से दोनों भाषाओं के रूपाख्यान का अध्ययन सामान्यतः बिना किसी रुकावट के सरलता से किया जा सकता है ।

अ. स्वरान्त शब्द

(१) पुंलिंग 'अ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

	प्राकृत	(कुमार)	पालि	
	एकवचन	बहुवचन	एकवचन	बहुवचन
प्रथमा (कर्ता)	कुमारो	कुमारा	कुमारो	कुमारा (धम्मासे*)
द्वितीया (कर्म)	कुमारं	कुमारा, कुमारे	कुमारं	कुमारे
तृतीया (करण)	कुमारेण	कुमारेहि	कुमारेन	कुमारेहि
	कुमारेणं	कुमारेहिं		(कुमारेभि)
चतुर्थी (संप्रदान)	(षष्ठी के समान)		कुमाराय, कुमारस्स	कुमारानं
पंचमी (अपादान)	कुमारा	कुमारेहिंतो	कुमारा	कुमारेहि
	कुमाराओ		कुमारस्मा	(कुमारेभि)
	कुमाराउ		कुमारम्हा	
षष्ठी (सम्बन्ध)	कुमारस्स	कुमाराण, कुमाराणं	कुमारस्स	कुमारानं
सप्तमी (अधिकरण)	कुमारे	कुमारेसु	कुमारे	कुमारेसु
	कुमारम्मि	कुमारेसुं	कुमारस्मिं	
			कुमारम्हि	
सम्बोधन	कुमार	कुमारा	कुमार	कुमारा

★ [यह रूप प्राचीन वैदिक अवशिष्ट है।]

(२) पुंलिंग 'इ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

(मुनि)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	मुणी	मुणिणो (मुणी) [मुणीओ, (मुणओ) मुणयो]	मुनि	मुनी, मुनयो
द्वि.	मुणिं	" "	मुनिं	मुनी, मुनयो
तृ.	मुणिणा	मुणीहि, मुणीहिं	मुनिना	मुनीहि (मुनीभि)
च.	(षष्ठी के समान)		मुनिस्स, मुनिनो	मुनीनं
पं.	मुणिणो (मुणीओ) मुणीउ	मुणीहिंतो	मुनिना, मुनिस्मा मुनिम्हा	मुनीहि (मुनीभि)
ष.	मुणिस्स (मुणिणो)	मुणीण, मुणीणं	मुनिनो, मुनिस्स	मुनीनं
स.	मुणिम्मि	मुणीसु, मुणीसुं	मुनिस्मिं, मुनिम्हि	मुनीसु (मुनिसु)
सं.	मुणि	मुणिणो, मुणी [मुणीओ, मुणओ, मुणयो]	मुनि	मुनी, मुनयो

(iii) पुंलिंग 'उ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

	प्राकृत	(भानु)	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	भाणू	भाणुणो, (भाणू) [भाणवो (भाणूओ)]	भानु	भानू, भानवो
द्वि.	भाणुं	" "	भानुं (भानुनं)	" "
तृ.	भाणुणा	भाणूहि, भाणूहिं	भानुना	भानूहि, (भानूभि)
च.	x	x	भानुनो, भानुस्स	भानूनं
पं.	भाणुणो (भाणूओ) भाणूउ	भाणूहिंतो	भानुना, भानुस्मा भानुम्हा	भानूहि, (भानूभि)
ष.	भाणुस्स, भाणुणो	भाणूण, भाणूणं	भानुनो, भानुस्स	भानूनं
स.	भाणुम्मि	भाणूसु, भाणूसुं	भानुस्मिं भानुम्हि	भानूसु, (भानुसु)
सं.	भाणु	भाणुणो, भाणवो	भानु	भानू, भानवे, भानवो

(२) नपुंसकलिंग 'अ, इ, उ' कारान्त शब्दों के रूप इस प्रकार हैं :

प्र.	फलं	फलाणि, फलाइं	फलं	फलानि, (फला)
द्वि.	फलं	फलाणि, फलाइं	फलं	फलानि, (फले)
प्र.द्वि.	अट्ठिं	अट्ठीणि, अट्ठीइं	अट्ठि (द्वि. अट्ठिं)	अट्ठीनि, (अट्ठी)
प्र.द्वि.	महुं	महूणि, महूइं	मधु (द्वि. मधुं)	मधूनि, (मधू)

(नपुंसकलिंग में अन्य विभक्ति-प्रयोग पुंलिंग शब्दों की तरह ही होते हैं)

(३) (i) स्त्रीलिंग 'आ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

(माला)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	माला	माला, मालाओ, (मालाउ)	माला	माला, मालायो
द्वि.	मालं	" " "	मालं	" "
तृ.	मालाए	मालाहि, मालाहिं	मालाय	मालाहि, (मालाभि)
च.	X	X	मालाय	मालानं
पं.	मालाए, (मालाओ)	मालाहिंतो	मालाय	मालाहि, (मालाभि)
ष.	मालाए	मालाण, मालाणं	मालाय	मालानं
स.	मालाए	मालासु, मालासुं	मालाय, मालायं	मालासु
सं.	माले, माला	माला, मालाओ	माले	माला, मालायो

(प्राकृत में सभी प्रकार के स्वरान्त स्त्रीलिंगी शब्दों में तृतीया एक वचन से सप्तमी एक वचन तक 'ए' विभक्ति प्रत्यय के स्थान पर 'य', 'इ' या 'अ' का भी प्रयोग कभी कभी मिलता है : जैसे-मालाय, मालाअ, मालाइ)

(ii) स्त्रीलिंग 'इ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

	प्राकृत	(रत्ति)	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	रत्ती	रत्ती, रत्तीओ (रत्तीउ)	रत्ति	रत्तियो, (रत्यो, रत्ती)
द्वि.	रत्तिं	" " "	रत्तिं	" " "
तृ.	रत्तीए	रत्तीहि, रत्तीहिं	रत्तिया, (रत्या)	रत्तीहि, (रत्तीभि)
च.	x	x	रत्तिया, (रत्या)	रत्तीनं
पं.	रत्तीए, (रत्तीओ)	रत्तीहिंतो	रत्तिया, (रत्या)	रत्तीहि, (रत्तीभि)
ष.	रत्तीए	रत्तीण, रत्तीणं	रत्तिया, (रत्या)	रत्तीनं
स.	रत्तीए	रत्तीसुं	रत्तियं, (रत्यं) रत्तिया (रत्या) (रत्तो, रत्तिं)	रत्तीसु, (रत्तिसु)
सं.	रत्ति	रत्ती, रत्तीओ	रत्ति	रत्तियो (रत्यो, रत्ती)

(iii) स्त्रीलिंग 'ई' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

(इत्थी)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	इत्थी	इत्थी, इत्थीओ, (इत्थीउ)	इत्थी	इत्थियो, (इत्थी)
द्वि.	इत्थिं	” ” ”	इत्थिं	” ”
तृ.	इत्थीए	इत्थीहिं, इत्थीहि	इत्थिया	इत्थीहि, (इत्थीभि)
च.	X	X	इत्थिया	इत्थीनं
पं.	इत्थीए, (इत्थीओ)	इत्थीहिंतो	इत्थिया	इत्थीहि, (इत्थीभि)
ष.	इत्थीए	इत्थीण, इत्थीणं	इत्थिया	इत्थीनं
स.	इत्थीए	इत्थीसु, इत्थीसुं	इत्थियं, इत्थिया,	इत्थीसु,(इत्थिसु)
सं.	इत्थि	इत्थी, इत्थीओ	इत्थि	इत्थी, इत्थियो,

(iv) स्त्रीलिंग 'उ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

(धेनु)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	धेणू	धेणू, धेणूओ, (धेणूउ)	धेनु	धेनू, धेनुयो
द्वि.	धेणुं	" " "	धेनुं	" "
तृ.	धेणूए	धेणूहि, धेणूहिं	धेनुया	धेनूहि, (धेनूभि)
च.	x	x	धेनुया	धेनूनं
पं.	धेणूए, (धेणूओ)	धेणूहिंतो	धेनुया	धेनूहि, (धेनूभि)
ष.	धेणूए	धेणूण, धेणूणं	धेनुया	धेनूनं
स.	धेणूए	धेणूसु, धेणूसुं	धेनुयं, धेनुया	धेनूसु
सं.	धेणु	धेणु, धेणूओ	धेनु	धेनू, धेनुयो

(v) स्त्रीलिंग 'ऊ' कारान्त शब्द के रूप इस प्रकार हैं :

	प्राकृत		(वधू)	पालि
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	वहू	वहू, वहूओ (वहूउ)	वधू	वधुयो, (वधू)
द्वि.	वहुं	,, ,, ,,	वधुं	,, ,,
तृ.	वहूए	वहूहि, वहूहिं	वधुया	वधूहि, (वधूभि)
च.	x	x	वधुया	वधूनं
पं.	वहूए, (वहूओ)	वहूहिंतो	वधुया	वधूहि, (वधूभि)
ष.	वहूए	वहूण, वहूणं	वधुया	वधूनं
स.	वहूए	वहूसु, वहूसुं	वधुयं, वधुया	वधूसु
सं.	वहु	वहू, वहूओ	वधु	वधू, वधुयो

(vi) 'ऋ'कारान्त शब्द

'ऋ'कारान्त शब्द (सम्बन्धवाची एवं कर्तृवाची) 'इ', 'उ', 'अर' अथवा 'आर' अन्तवाले बना दिये जाते हैं। प्रथमा एवं द्वितीया विभक्ति के सिवाय प्राय: उनके रूप स्वरान्त शब्दों की तरह ही बनते हैं। अवशिष्ट के रूप में कुछ रूप इस प्रकार भी मिलते हैं :

(पितृ)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	पिया	पियरो	पिता	पितरो, (पितुनो)
द्वि.	पियरं	पियरो, पियरे	पितरं	पितरो, पितरे
तृ.पं.	–	–	पितरा	–
ष.	–	–	पितु, (पितुनो)	–
स.	पियरि	–	पितरि	–

(ii) (मातृ)

	प्राकृत		पालि	
प्र.	माया	मायरो	माता	मातरो
द्वि.	मायरं	मायरो	मातरं	मातरे, मातरो
तृ.पं.	–	–	मातरा	–
च.ष.	–	–	मातु	–
स.	–	–	मातरि	–

	प्राकृत	(दातृ)	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	दाया	दायारो, दाया	दाता	दातारो
द्वि.	दायारं	,, ,,	दातारं	दातारे, दातारो
तृ.पं.	—	—	दातारा	—
च.ष.	—	—	दातु	—
स.	—	—	दातरि	—

'ओ'कारान्त शब्द

'गो' शब्द गव अथवा गाव में बदलकर 'अ'कारान्त शब्द की तरह (प्रथमा एवं द्वितीया के सिवाय) ही रूप धारण करता है । कुछ अवशिष्ट रूप इस प्रकार हैं :

	प्राकृत	(गो)	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	गो	गाओ	गो	गावो, गवो
द्वि.	—	,,	गावुं	,, ,,
तृ.प.	—	—	गावा, गवा	—
च.ष.	—	गवं	गवं	गवं, गुन्नं, गोनं
सं.	गो	गाओ	गो	गावो, गवो

ब. व्यंजनांत शब्द

सामान्यतः शब्द के अंतिम व्यंजन के लोप अथवा उसमें होने वाले स्वरागम के कारण व्यंजनान्त शब्द स्वरान्त बन जाते हैं और उनके रूप स्वरान्त शब्दों की तरह ही बनते हैं, फिर भी अवशिष्ट के रूप में कुछ विशेष रूप इस प्रकार मिलते हैं :

'अन्', (मन्, वन्)-अंत वाले शब्द

(i) (राजन्)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	राया	रायाणो, राइणो	राजा	राजा, राजानो
द्वि.	रायाणं, राइणं, रायं	,, ,,	राजानं (राजं)	राजानो
तृ.	रण्णा, रन्ना	राईहिं	रञ्ञा, राजिना	राजूहि, (राजूभि, रञ्ञेहि)
च.	—	—	रञ्ञो, (राजिनो, रञ्ञस्स)	रञ्ञं, राजूनं
पं.	राइणो, रन्नो, रण्णो	राईहिंतो	रञ्ञा	राजूहि, राजूभि
ष.	,, ,, ,,	रायाणं, राईणं	रञ्ञो(रञ्ञस्स, राजिनो)	रञ्ञं, राजूनं
स.	राइम्मि	राईसु	राजिनि, (रञ्ञे)	राजूसु
सं.	राया	रायाणो, राइणो, राजा		राजा, राजानो

(ii) (आत्मन्)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	आया, अप्पा	अप्पाणो, अत्ताणो,	अत्ता	अत्तानो(अत्ता)
द्वि.	आयाणं, अप्पाणं, अत्ताणं.	" "	अत्तानं, (अत्तं)	अत्तानो, (अत्तो)
तृ.	अप्पणा, अत्तणा	—	अत्तना	(अत्तेहि)
च.	—	—	अत्तनो	—
पं.	आयओ, अत्तओ, अप्पओ	—	अत्तना	(अत्तेहि)
ष.	अप्पणो, अत्तणो	—	अत्तनो	(अत्तानं)
स.	(अप्पणि, अत्तणि)	—	अत्तनि	—

(iii) (कर्मन्)

प्र.	कम्म	—
द्वि.	कम्म	—
तृ.	कम्मुणा	—
च.ष.	कम्मुणो	कम्मुणं
स.	-	—
सं.	-	—

(iv) (ब्रह्मन्)

प्र.	ब्रह्मा	ब्रह्मा, ब्रह्मानो
द्वि.	ब्रह्मं, ब्रह्मानं	ब्रह्मानो
तृ.प.	ब्रह्मना, ब्रह्मुना	ब्रह्मूहि, (ब्रह्मूभि)
च.ष.	ब्रह्मुनो	ब्रह्मूनं
स.	ब्रह्मनि	—
सं.	ब्रह्मे	ब्रह्मा, ब्रह्मानो

(iv) 'अत्' (मत्, वत्) अंतवाले शब्द

अत्, (मत् एवं वत्) अन्त वाले शब्द अंत, मंत एवं वंत में बदलकर 'अ' कारान्त बन जाते हैं और 'अ' कारान्त की तरह उनके रूप बनते हैं। कुछ विशेष रूप अवशिष्ट के रूप में इस प्रकार हैं :

(अर्हत्, गच्छत्)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	अरहं, गच्छं	अरहा, अरहंतो (गच्छंतो)	अरहा, अरहं, गच्छं	अरहन्तो, गच्छन्तो,
द्वि.	–	–	–	–
तृ.	अरहया, गच्छया	–	अरहता, गच्छता	–
पं.	अरहओ, गच्छओ		,, ,,	
च.	अरहओ, गच्छओ	–	अरहतो, गच्छतो	अरहतं, गच्छतं
ष.	,, ,,	–	,, ,,	,, ,,
स.	–	–	अरहति, गच्छति	–
सं.	अरहं, गच्छं	–	अरहा, गच्छं	–

(v) 'इन्', (मिन्, विन्) अंत वाले शब्द

(दण्डिन्)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
प्र.	दंडी	दंडिणो	दण्डी, (दण्डि)	दण्डिनो, (दण्डि)
द्वि.	दंडिणं	"	दण्डिनं	दण्डिनो, दण्डी
च.ष.	दंडिणो	—	दण्डिनो	—
स.	दंडिणि	—	दण्डिनि	—

(vi) 'स्' अंत वाले शब्द

(मनस्)

	प्राकृत		पालि	
प्र.द्वि.	मणो	—	मनो	—
तृ.	मणसा	—	मनसा	—
ष.	मणसो	—	मनसो	—
स.	मणसि	—	मनसि	—

स. अपभ्रंश : नाम-विभक्ति प्रकरण

अपभ्रंश भाषा में प्राकृत भाषा के प्रचलित रूपों का सर्वथा लोप तो नहीं हुआ परंतु पदरचना सम्बंधी प्रायः पर्याप्त वैविध्य और अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। यह वैविध्य अपभ्रंश भाषा का जन-भाषा के रूप में व्यापक स्तर पर प्रचलित होने का द्योतक है। इसी वैविध्य के कारण अपभ्रंश भाषा को प्राकृत भाषा से अलग दर्ज़ा मिला है। यहाँ पर इस भाषा के केवल नाम-प्रकरण का ब्यौरा ही दिया जा रहा है। पद-रचना सम्बंधी अन्य प्रकरण सर्वनाम, क्रिया-पद, कृदन्त आदि आगे प्राकृत एवं पालि के साथ ही दिये गये हैं।

(i) पुंलिंग 'अ'कारान्त शब्द

(देव)

	ए.व.		ब.व.	
प्र.	देवु,	देवा, देव, देवा, देवहो	देव,	देवा
द्वि.	देवु,	देव, देवा	देव,	देवा, देवे
तृ.	देवें,	देवेणं, देवैणं, देविण, देवँ, देवे, देवे, देविं, देवि, देवइँ, देवइ	देवहिं	देवहि, देवहिँ, देवेहिं, देवेहि, देवेहिँ, देविहिँ
पं.	देवहे,	देवहें, देवहो, देवहु, देव-होंतउ	देवहुं	देवहुँ
ष.	देवस्सु,	देवासु, देवसु, देव	देवहं	देवहुं, देवहुँ, देवहँ
	देवहो,	देवहों, देवहु, देवहुं, देवह	देवाहँ	देवाणं, देव
स.	देवे, देवि,	देवें, देविं, देवहि, देवहिँ, देवइ	देवहिं	देवहिँ, देविहिँ, देवेहिँ, देवेहिं
सं.	देवु	देव, देवा, देवो	देव	देवा, देवहो, देवहों

(ii) पुंलिंग 'इ'कारान्त शब्द

(गिरि)

	ए.व.		ब.व.	
प्र.	गिरि, गिरी		गिरि, गिरी	
द्वि.	" "		" "	
तृ.	गिरिएं,	गिरिणा, गिरिण, गिरिइं, गिरिं	गिरिहिं, गिरिहिँ	
पं.	गिरिहे,	गिरिहे	गिरिहुं, गिरिहुँ	
ष.	गिरिहों,	गिरिहो, गिरिहें, गिरिहे, गिरिहुं, गिरि	गिरिहुँ, गिरिहँ,	गिरिहं, गिरिहुं, गिरिहिं गिरिहिँ, गिरि
स.	गिरिहिं,	गिरिहि, गिरिहे	गिरिहुं, गिरिहिँ, गिरिहुँ	
सं.	गिरि, गिरी		गिरि, गिरी,	गिरिहो, गिरिहों

(पुंलिंग 'उ'कारान्त शब्द के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं।)

(iii) नपुंसकलिंग 'अ, इ, उ' कारान्त शब्द

	ए.व.	ब.व.
प्र.	कमल, कमला, कमलु	कमल, कमला, कमलइं, कमलाइं, कमलइँ, कमलाइँ, कमलइ
द्वि.	" " "	" " " " " " "
प्र.	वारि, वारी	वारि, वारी, वारिइं, वारीइं, वारिइँ, वारीइँ
द्वि.	" "	" " " " " "
प्र.	महु, महू	महु, महू, महुइं, महुइँ, महूइं, महूइँ
द्वि.	" "	" " " " " "

स्वार्थे 'अ (क)' प्रत्यय-युक्त शब्द

	ए.व.	ब.व.
प्र.	तुच्छउँ, तुच्छउं	तुच्छइं, तुच्छइँ, तुच्छइ
द्वि.	" "	" " "

(अन्य विभक्ति रूप पुंलिग शब्द की तरह ही बनते हैं।)

(iv) स्त्रीलिंग 'आ'कारान्त शब्द (माला)

	ए.व.		ब.व.	
प्र.	माल, माला		माल, माला, मालउ	मालाउ, मालाओं
द्वि.	" "		" " "	" "
तृ.	मालएँ, मालाएँ	मालाए, मालएँ, मालइं, मालइ, मालें	मालहि, मालहिँ	मालाहिं, मालाहिँ
पं.	मालहे, मालहेँ	मालहि	मालहु	
ष.	मालहे, मालहेँ	मालहि, मालहिँ	मालहु, मालहुँ	मालहुं, मालहं, मालाणं, मालाण, मालहँ
स.	मालहि	मालहिँ, मालहे, मालहेँ	मालहिं, मालहिँ	
सं.	माल, माला, मालेँ, मालएँ		माल, माला	मालहो, मालहोँ, मालाहो

(स्त्रीलिंग 'इ, ई, उ एवं ऊ'कारान्त शब्दों के रूप भी इसी प्रकार बनते हैं ।)

४. पद-रचना : सर्वनाम प्रकरण

(i) प्रथम पुरुष : 'अस्मद्'

	एक वचन			बहुवचन		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	अहं, हं	अहं	हउँ	अम्हे	मयं	अम्हे, अम्हइँ
	अहअं, अहयं	—	हउं, हं	वयं	अम्हे, नो	अम्हें, अम्हि, अम्हइं
द्वि.	मं, ममं, मे,	मं	मइँ	अम्हे	अम्हे, अस्मे, नो	अम्हे, अम्हइँ
	मह	ममं	मइ, मइं	णे, णो	अस्माकं, अम्हाकं	अम्हें, अम्हइं
तृ.	मए, मइ, मे	मया	मइँ	अम्हेहिं	अम्हेहि	अम्हेहिँ, अम्हिहिँ
-		मे	मइं, मए, मएण	णे	अम्हेभि, नो	अम्हेहिं, अम्हहिँ
च.) ष.	मम, मह	मम,	महु, मज्झु	अम्हाणं	अम्हाकं	अम्हहँ, अम्हहो
	मज्झ, मे	मय्हं		अम्हाण		अम्हह अम्ह
	ममं, महं,	मे, ममं	ष=महुँ, महारउ,	अम्हं, णो,	अस्माकं,	अम्हहं, अम्हहुं
	मज्झं, मि	अम्हं	मेरउ, मोर	णे	अम्हं, नो	ष=अम्हार, अम्हारउ
पं.	ममाओ, मत्तो	मया	महु, मज्झु	अम्हेहिंतो	अम्हेहि	अम्हहँ, अम्ह
	ममाहिंतो	मे	—	—	अम्हेभि	अम्हहं, अम्हहुं
स.	मइ, ममम्मि	मयि	मइँ	अम्हेसु,-सुं	अम्हेसु	अम्हासु
	मे, मि, मए	—	मइं	—	—	अम्हेहिँ

(ii) द्वितीय पुरुष : 'युष्मद्'

	एक वचन			बहुवचन		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	तुमं, तं	त्वं	तुहुँ	तुम्हे, तुब्भे	तुम्हे	तुम्हे, तुम्हइं, तुम्हइँ
	तुं, तुवं, तुहं	तुवं	तुहु	तुज्झे	–	–
द्वि.	तुमं ते	तं	तइँ, पइँ	तुम्हे,तुब्भे	तुम्हे	तुम्हे, तुम्हइँ. तुम्हइं
	तुं, तं, तुह, तुवं	त्वं, तुवं, तवं	–	तुज्झे, भे, वो	तुम्हांकं वो	–
तृ.	तए, तुए	तया	तइँ, पइँ	तुम्हेहिं,	तुम्हेहि	तुम्हेहिँ
	तुमे, तुमए			तुब्भेहिं		
	तइ, तुइ, तुमाइ, ते	त्वया, ते	–	तुज्झेहिं, भे, तुम्मेहिं	तुम्हेभि, वो	–
च.)	तव, ते	तव, तुम्हं	तुज्झु,	तुम्हाणं,तुब्भं	तुम्हाकं	तुम्हहँ, तुम्हहुँ
ष.)	तुज्झ		तुज्झह	तुम्हं		तुम्हह
	तुह, तुब्भ, तुम्ह		ष=तउ, तुध्र	भे, वो	तुम्हं, वो	ष,=तुम्हार
	तुमं, तुम्म, तुज्झं,	तवं, तुम्हं,	तोहार, तुहार			
	तुहं, तुब्भं, तुम्हं	ते	तोर			
पं.	तुमाओ	तया	तुज्झु	तुम्हेहिंतो, तुब्भेहिंतो	तुम्हेहि	तुम्हहँ
	तत्तो, तुमत्तो, तुवत्तो	त्वया	तउ, तुध्र	–	तुम्हेभि	तुम्हहुँ
	तुमाहि, तुमाहिंतो					
स.	तइ, तुमम्मि	तयि	तइँ, पइँ	तुम्हेसु, तुज्झेसु, तुम्हेसु		तुम्हासु
	तुमे, तुवि, तुइ	त्वयि	–	तुब्भेसु तुम्हासु		

(iii) तृतीय पुरुष : 'तद्'

(एक वचन)

	पुंलिंग			स्त्रीलिंग		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	सो	सो	सोँ	सा	सा	स
	स	स	सु	—	—	—
द्वि.	तं	तं	तं	तं	तं	तं
	से	-	सु	-	-	-
तृ.	तेण, तेणं	तेन	तें	ताए, तीए	ताय	ताइं
	से, तिणा	-	ताइं, तिण	तीइ, तीअ	-	ताएँ, ताएं, तीएं
च. / ष.	तस्स	तस्स	तस्सु, तासु, तहोँ	ताए, तीए	ताय	तासु
	से, ते, तास	-	ताह, ताहोँ, तसु	तीसे से तीअ,	तस्साय, तिस्साय	ताह, तहेँ, ताहेँ
			ष. ताहर	तिस्सा	तस्सा, तिस्सा	तिहे ँ
पं.	ताओ	तम्हा, तस्मा	—	ताओ	ताय	—
	तम्हा, तो, तओ	—	—	—	—	—
	तत्तो, ताउ, तओहिंतो		-	-	-	- -
स.	तम्मि, तस्सि	तस्मिं, तम्हि	तहिँ	ताए, नीए	तायं	तहिँ
	—	—	तहिं	तांसं	तस्सं, तासं, तिस्सं	तहिं

(iii) (बहुवचन)

	पुंलिंग			स्त्रीलिंग		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	ते	ते	ते	ताओ	ता	ताओ
	से	–	तें	ता	तायो	ताउ
द्वि.	ते	ते	ते	ताओ	ता	ताओ
	से	–	–	ता	तायो	ताउ
तृ.	तेहि, तेहिं	तेहि	तेहिँ	ताहि, ताहिं	ताहि	तीहिँ
	–	तेभि	–	–	ताभि	–
च.]	तेसिं, ताण	तेसं	ताहँ	तासिं	तासं	ताहँ
ष.]	सिं, ताणं	तेसानं	ताण, तहँ	ताणं	तासानं	–
पं.	तेहिंतो	तेहि	–	ताहिंतो	ताहि	–
	तेहिं, तेब्भो	तेभि	–	–	–	–
स.	तेसुं ,तेसु	तेसु	तहिँ	तासु, तासुं	तासु	तहिँ

	प्राकृत		पालि		अपभ्रंश	
नपुंसकलिंग:	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व	ए.व.	ब.व.
प्र.द्वि.	तं	ताणि, ताइं	तं	तानि	तं	ताइं, ताइँ, ताइ

(iv) एत (एतद्) : एक वचन

	पुंलिंग			स्त्रीलिंग		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	एसो	एसो	एसु, एहु, एउ,	एसा	एसा	एही
	एस	एस	एहों, एह, इहु,	एस	-	एह
			उहु, एहउ			
द्वि.	एअं, एयं	एतं	एहु	एअं	एतं	-
	-	एनं, नं	एह, एहउ	-	एनं, नं	-
तृ.	एएण, एएणं	एतेन	एण, एएं,एं	एआए	एताय	एयए
	एइणा	एनेन	-	एईए	-	एइए
पं	एआओ,एयाओ	एतस्मा,	एयहों	एआओ	एताय	-
	एत्तो	एतम्हा	-	एईए	-	-
च.ष.	एअस्स,	एतस्स	एयहों, एयहु	एआए	एतस्सा, एतिस्सा	एयहें
	एयस्स	-	एयह, एयस्सु	एईए	एतस्साय, एतिस्साय	एइए
					एताय	
स.	एअम्मि, एयम्मि,	ऐतस्मिं, एतम्हि	इहि	एआए	एतिस्सं	–
	एअंसि, एयंसि	–	–	एईए	एतस्सं, एतायं	–

नपुंसकलिंग :

	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	एअं	एतं	एउ, एह, एहु, एहउं
द्वि.	"	एतं, (नं, एनं)	"

(iv) एत (एतद्) बहुवचन

	(पुंलिंग) प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	(स्त्रीलिंग) प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	एए	एते	एइ, ए	एआओ	एता,	एयउ, एयओ
	—	—	ओइ	एआ	एतायो	एयाउ
द्वि.	एए	एते	एइ	एआओ	एता, एतायो	एइ
	—	ने	—	—	—	—
तृ.	एएहि, एएहिं	एतेहि	एयहिं, एयहिँ	एआहिं	एताहि	एहिं, एहिँ
	—	एतेभि	—	—	एताभि	—
पं.	एएहिंतो	एतेहि	—	एआहिंतो	एताहि	—
	—	एतेभि	—	—	एताभि	—
च.ष.	एएसिं	एतेसं	एयहं, एयहँ	एआसिं	एतासं	एयहुँ
	एआणं	एतेसानं	—	एआणं, एईणं	एतासानं	—
स.	एएसु, एएसुं	एतेसु	—	एआसुं	एतासु	—

नपुंसकलिंग :

	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.द्वि.	एआणि, ऐआइं	एतानि	एयइं

(v) इम (इदम्) एकवचन

	पुंलिंग			स्त्रीलिंग		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	अअं, अयं	अयं	इमु	इअं, इयं	अयं	-
	इमो	–	आय, आयउ	अयं,इमा,इमिआ	––	-
द्वि.	इमं	इमं	,,	इमं	इमं	-
तृ.	इमेण, इमेणं	इमिना	इमिण,	इमीए, इमाए	इमाय	-
	इमिणा, णेण,	अनेन,	अणेण, आएण,	इमिणा,	-	-
	अणेण, एण	अमिना	आएं, एं	इमेण		
पं.	इमाओ	इमस्मा, इमम्हा	-	इमाओ	इमाय	-
	आ	अस्मा, अम्हा	-	-	-	-
च.ष.	इमस्स	इमस्स	इमस्सु	इमाए	इमिस्सा, अस्सा	-
	अस्स	अस्स,	आयहो	इमीए, इमीसे	इमाय, इमिस्साय	आयहो,
		इमिस्स			अस्साय	आयहे
स.	इमम्मि	इमस्मिं, इमम्हि	-	इमाए	इमाय, इमस्सिं	-
	इमस्सिं, इमंसि,	अस्मिं,	आअहिं	इमीसे	इमायं, इमिस्सं,	-
	अस्सिं, इअम्मि,	अम्हि			अस्सं	
	अअम्मि, अयंसि					

नपुंसकलिंग :	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.द्वि.	इमं इदं	इमं, इदं	इमु, आयउं, आयउ, ए, आउ

(v) इम (इदम्) बहुवचन

	पुंलिंग प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	स्त्रीलिंग प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
प्र.	इमे	इमे	–	इमाओ	इमा	इमीउ
	–	–	–	इमीओ, इमीउ	इमायो	–
द्वि.	इमे	इमे	–	इमाओ	इमा	–
	–	–	–	इमीओ	इमायो	–
तृ.	इमेहि, इमेहिं	इमेहि	–	इमाहिं	इमाहि	–
	एहि, एहिं	इमेभि, एहि	–	अणाहिं, आहिं	इमाभि, एहि	आयहिँ
पं.	इमेहिंतो	इमेहि	–	इमाहिंतो	इमाहि	–
–		इमेभि, एहि	–	–	इमाभि	–
च.ष.	इमाण	इमेसं	–	इमीणं	इमासं	–
	इमेसिं, एसिं	एसं			आसं	
		इमेसानं,	आयहं	इमासिं	इमासानं	आयहँ
		एसानं	आयहँ			
स.	इमेसुं	इमेसु	–	इमासुं	इमासु	–
	एसु	एसु	–	–	–	–

नपुंसकलिंग	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
	इमाणि, इमाइं	इमानि	आयइ, आयइं

(vi) अमु (अदस्)

	एकवचन				बहुवचन			
	प्राकृत		पालि		प्राकृत		पालि	
	पुंलिंग	स्त्रीलिंग	पुंलिंग	स्त्रीलिंग	पुंलिंग	स्त्रीलिंग	पुंलिंग	स्त्रीलिंग
प्र.	अमु, असो	अमू	अमु, असु	असु	अमुणो	अमूउ, अमूओ अमी	अमू	अमू अमूयो
द्वि.	अमुं	अमुं	अमुं	अमुं	अमुणो	,,	अमू	,,
तृ.	अमुणा	—	अमुना	अमुया	अमूहि	-	अमूहि अमूभि	अमूहि अमूभि
पं.	अमूओ,अमूउ अमूहिंतो	— —	अमुस्मा, अमुम्हा	अमुया	अमूहिंतो	-	अमूहि अमूभि	समूहि अमूभि
च.ष.	अमुस्स अमुणो	— —	अमुस्स अदुस्स	अमुस्सा अमुया	अमूण	-	अमूसं अमूसानं	अमूसं अमूसानं
स.	अमुम्मि	—	अमुस्मिं अमुम्हि	अमुस्सं अमुया, अमुयं	अमूसु	-	अमूसु	अमूसु

नपुंसकलिंग :	प्राकृत	पालि	प्राकृत	पालि
प्र. द्वि.	अमुं	अदुं, अमुं	अमूणि, अमूइं	अमू, अमूनि

	एकवचन		(vii) (एन, न)			बहुवचन			
	प्राकृत		पालि		अपभ्रंश	प्राकृत		पालि	
	पुं.	स्त्री.	पुं.	स्त्री.	पुं.	पुं.	स्त्री.	पुं.	स्त्री.
प्र.	—	—	—	—	—	णे	—	ने	ना,नायो
द्वि.	एणं, इणं णं	एणं, इणं णं	एनं नं	एनं नं	—	णे	—	ने	ना, नायो
तृ.	णेण, णेणं	णाए	नेन	नाय	एणें	णेहि, णेहिं	णाहि, णाहिं	नेहि (नेभि)	— (नाभि)
पं.	णाओ,णाउ	—	नस्मा, नम्हा	नाय	—	णेहिं	—	नेहि (नेभि)	—
च.ष.	—	—	नस्स	नाय	—	णेसिं	—	नेसं (नेसानं)	नासं (नासानं)
स.	णम्मि	—	नस्मिं, नम्हि	नायं	—	णेसु	—	नेसु	नासु

नपुंसकलिंग :	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व
प्र.द्वि.	इणं, इणमो णं	— —	एनं नं	— ने, नानि

(viii) अपभ्रंश भाषा में प्रयुक्त 'किम्' एवं 'यद्' के कुछ विशिष्ट रूप

	पुल्लिंग	(एक वचन)	स्त्रीलिंग
प्र.द्वि.	कवणु, कु, जु	पं. कउ	तृ. काइं, जाइं
तृ.	कें, किं, कवणे, कवणेण	ष. कासु, कहों	ष. काहे
	जें, जिं, जिणि	स. कहिं, जहिं	
		(बहुवचन)	
प्र.	कि, जि		काउ
	(ए.व.)	नपुंसकलिंग	(ब.व)
प्र.द्वि.	कि,किँ, कइं, कइँ, काइं, काइँ		कइं, कइँ, काइ, काइँ

(ix) संख्यावाची शब्दों के कुछ विशिष्ट रूप

	प्राकृत	पालि	प्राकृत	पालि
प्र. द्वि.	दो, दुवे, दोण्णि	द्वे, दुवे	ष. दोण्हं, तिण्हं,	द्विन्नं, दुविन्नं, तिन्नं,
	तओ, तिण्णि	तयो, तीनि	चउण्हं, पंचण्हं	चतुन्नं, पञ्चन्नं
	चउरो, चत्तारि	चतुरो, चत्तारो		

यहाँ पर सभी (प्रशनवाची, संकेतवाची, संख्यावाची, इत्यादि) सर्वनामों के रूप नहीं दिये गये हैं क्योंकि उनके रूप स्वरान्त शब्दों की तरह ही चलते हैं। ऊपर अपभ्रंश के नीचे सर्वनामों के जहाँ पर अलग रूप नहीं दिये गये हैं वहाँ पर प्राकृत के ही रूप चलते हैं।

५ पद-रचना : क्रिया प्रकरण

प्रारंभिक

प्राकृत भाषाओं में कारक रूपों की अपेक्षा क्रिया के रूपों में अधिक विकार हुआ है । व्यंजनान्त नाम शब्दों की तरह व्यंजनांत क्रिया-धातुओं को भी 'अ'कारान्त बनाया गया इससे सरलता एवं एक रूपता आ गयी । द्विवचन का तो सर्वथा लोप हो ही चुका था । परस्मैपद और आत्मनेपद का भेद मिटने लगा । कुछ भाषाओं में आत्मनेपद के कुछ विरल उदाहरण मिलते हैं और बाद में उनका भी क्रमशः लोप हो गया । आत्मनेपद धातु परस्मैपद प्रत्यय लेने लगे । कर्तृ-वाच्य एवं कर्म-वाच्य का भेद धातु सिद्धि तक ही रहा, प्रत्ययों में सर्वथा मिट गया और कर्म-वाच्य के लिए परस्मैपदी प्रत्ययों का ही उपयोग होने लगा ।

काल और क्रियार्थ (वृत्ति) के लिए जो दस लकार थे उनमें भी कमी हुई । परोक्ष-भूत का तो सर्वथा लोप हो रहा था, साथ ही साथ अनद्यतन-भूत एवं सामान्य-भूत भी शनैः शनैः मिट गये और भूतकाल के लिए एक मात्र कर्मणि कृदन्त के रूपों का प्रचलन हो गया । अपभ्रंश भाषा में भविष्य के बदले विध्यर्थ कृदन्त का प्रयोग बढने लगा । इस प्रकार प्राकृत भाषाओं में मुख्यतः वर्तमान और भविष्य काल तथा आज्ञार्थ और विधिलिंग क्रियार्थ ही प्रचलित रहे । वर्तमान काल भविष्य काल के लिए भी प्रयुक्त होने लगा और विधिलिंग तो चारों के लिए ।

प्राचीन भारतीय आर्य भाषा (OIA) में क्रियात्मक मूल धातु दस गणों में विभक्त है और किसी भी प्रकार के प्रत्यय जोडने के पहले उनमें कोई स्वर या व्यंजन या वर्ण (विकरण तत्त्व) लगाकर उन्हें सिद्ध किया जाता है, परंतु प्राकृत भाषाओं में वे सिद्ध धातु ही प्राकृत सम्बन्धी उपयुक्त ध्वन्यात्मक परिवर्तन के बाद मूल धातु बन गये । इस प्रकार प्राकृत के सभी धातु स्वरान्त बन गये । प्राकृत भाषाओं में 'अ'कारान्त धातुओं की बहुलता है और उनके बाद 'ए' कारान्त की । कुछ धातु 'आ'कारान्त और 'ओ'कारान्त भी मिलते हैं । अनेक धातु 'ए'कारान्त बना दिये गये हैं। अवशिष्ट के रूप में कुछ व्यंजनांत धातुओं के रूप (ध्वन्यात्मक परिवर्तन के बाद) भी मिलते हैं ।

संस्कृत के सिद्ध धातु प्राकृतों में मूल धातु के रूप में :

संस्कृत	पालि	प्राकृत	संस्कृत	पालि	प्राकृत
गम्	गम	गम	श्रु(श्रुणो)	सुणो, सुणा	सुण
गम्(गच्छ्)	गच्छ	गच्छ	प्र+आप्	पापुणो,	पाव
			(प्राप्नो)	पापुणा	
पा(पिब्)	पिब	पिब, पिअ		पप्पो, पाप	
भू(भव्)	भव, हो	भव, हव,	शक्(शक्नो)	सक्कुणो .	सक्कुणो
		हुव, हो		सक्को	
जि(जय्)	जय, जे	जय, जे		सक्कुणा	सक्क
मृ(मर्)	मर	मर	इष्(इच्छ्)	इच्छ	इच्छ
नी(नय्)	नय, ने	नय, ने	रुध्(रुन्ध्)	रुन्ध	रुंध
पच्	पच	पय	भुज्(भुञ्ज्)	भुञ्ज	भुंज
लभ्	लभ	लह	छिद्(छिन्द्)	छिन्द	छिंद
वृत्(वर्त्)	वट्ट, वत्त	वट्ट	तन्(तनो)	तनो	तण
इ(ए)	ए	ए	कृ(करो)	करो, कर	करो, कर
स्वप्	सुप	सुव	जि(जिना)	जिना	जिणा, जिण
हन्	हन	हण	क्री(क्रीणा)	किणा	किणा, किण
दा(ददा)	ददा, दे	दे	ग्रह(ग्रह्णा)	गण्हा, गण्ह	गेण्ह, गह
हा(जहा)	जहा, जह	जह	ज्ञा(जाना)	जाना	जाणा, जाण
नृत्(नृत्य्)	नच्च	णच्च	चुर्(चोरय्)	चोरय, चोरे	चोरे
कुप्(कुप्य्)	कुप्प	कुप्प	कथ्(कथय्)	कथय, कथे	कहे
विद्(विद्य्)	विज्ज	विज्ज	तुल(तोलय्)	तोलय, तोले	तोले

उत्तर कालमें कुछ कर्मणि भूत कृदन्त भी मूल धातुके रूपमें प्रयुक्त होने लगे, जैसे–मुक्क(मुक्त), लग्ग(लग्न), मुक्कइ, लग्गइ ।

इन परिवर्तनों के कारण प्राकृत भाषाओं के धातुओं को निम्न प्रकार से विविध स्वरान्तों में विभाजित किया जाता हैं :

(१)	(२)	(३)	(४)		
अ	आ	ओ	ए(अय), ('अ'कारान्त), एवं(अन्य स्वरान्त)		
भव, हव	उट्ठा	करो	कथे, कहे	वंदे	दे(दा)
गच्छ	ठा	सक्को	पाले(पालय्)	भजे	उट्ठे(उट्ठा)
इच्छ	जाना	भो, हो	आणवे	गच्छे	जे(जि)
पुच्छ	पापुणा	पापुणो	(आज्ञापय्)	इच्छे	ने(नी)
पच	जिना	सक्कुणो	कारे(कारय्)	छिन्दे	करे(कृ)
लभ, लह	तनो	करावे(कारापय्)	पुच्छे		
हन, हण				पचे	
नच्च, णच्च					
छिन्द					
कर					
गण्ह, गह					

(i) वर्तमान काल

(परस्मैपद)

(लभ)

	एक वचन			बहु वचन		
	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
उ.पु.	लहामि	लभामि	लहउं(उँ)	लहामो	लभाम	लहहुं(हुँ)
	(लहं)	(लभं)	(लहमि)	(लहाम, -मु)		(लहमो)
म.पु.	लहसि	लभसि	लहहि(सि)	लहह	लभथ	लहहु(हो)
अ.पु.	लहइ	लभति	लहइ	लहंति	लभन्ति	लहहिं(हिं)
						लहन्ति

[प्राकृत में 'अ'कारान्त धातु को 'ए' अथवा 'इ'कारान्त कर दिया जाता है, जैसे-लहेमो, लहिमो, लहेसि, लहेइ]

(आत्मनेपद)

(लभ)

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	लहे	लहामहे	लभे	लभामहे (-म्हे, -मसे, -म्हसे)
म.पु.	लहसे	–	लभसे	(लभव्हे)
अ.पु.	लहए	लहंते, लहिरे	लभते	लभन्ते, लभरे

'आ', 'ए' एवं, 'ओ' कारान्त धातुओं के रूप : परस्मैपद

	प्राकृत				पालि			
	(स्था)		(दा)		(जिना)		(दा)	
उ.पु.	ठामि	ठामो	देमि	देमो	जिनामि	जिनाम	देमि	देम
म.पु.	ठासि	ठाह	देसि	देह	जिनासि	जिनाथ	देसि	देथ
अ.पु.	ठाइ	*ठायंति	देइ	देंति	जिनाति	जिनन्ति	देति	देन्ति

(भू=हो+)

	प्राकृत				पालि	
उ.पु.	होमि	(होआमि. होएमि)	होमो	(होआम, होएमो, होइमो)	होमि	होम
म.पु.	होसि	(होअसि, होएसि)	होह	(होअह, होएह)	होसि	होथ
अ.पु.	होइ	(होअइ, होएइ)	होंति (हुंति)	(होअंति, होएंति, होइंति)	होति	होन्ति

[+प्राकृत में कुछ धातुओं में 'अ', 'य' एवं 'ए' (इ) विकरण लगे हुए रूप भी चलते हैं ।]

	प्राकृत	'अस्' के रूप	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	अम्हि, अंसि, म्हि, मि	मो, मु	अस्मि, अम्हि	अस्म, अम्ह
म.पु.	असि, सि	त्थ, थ	असि	अत्थ
अ.पु.	अत्थि	संति	अत्थि	सन्ति

[प्राकृत में 'अत्थि' का प्रयोग सभी पुरुषों एवं सभी वचनों के लिए भी किया जाता है ।]

(ii) भविष्य काल

प्राकृत में भविष्य काल के लिए क्रियात्मक धातु में 'इस्स' (स्स) और 'इहि'(हि) लगाने के बाद प्रत्यय जोड़े जाते हैं । पालि में 'इस्स' और 'स्स' (कभी कभी 'ह' और 'हि' भी) एवं अपभ्रंश में 'स' और 'ह'भी जोड़ा जाता हैं ।

	प्राकृत	(भण)	पालि	
उ.पु.	भणिस्सामि	भणिस्सामो,	भणिस्सामि	भणिस्साम
	भणिस्सं	-मु, -म	भणिस्सं	
	भणिहिमि भणिहिमो -मु, -म			
म.पु.	भणिस्ससि	भणिस्सह	भणिस्ससि	भणिस्सथ
	भणिहिसि	भणिहिह		
अ.पु.	भणिस्सइ	भणिस्संति	भणिस्सति	भणिस्सन्ति
	भणिहिइ	भणिहिंति		

		(नी)		
उ.पु.	नेस्सामि	नेस्सामो (-मु,-म)	नेस्सामि	नेस्साम
म.पु.	नेस्ससि	नेस्सह	नेस्ससि	नेस्सथ
अ.पु.	नेस्सइ	नेस्संति	नेस्सति	नेस्सन्ति

	प्राकृत		पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
		(कृ)		
उ.पु.	काहामि, काहं	काहामो	काहामि, काहं	काहाम
म.पु.	काहिसि	काहिह	काहसि	(काहथ)
अ.पु.	काहिइ	काहिंति	काहति, काहिति	काहन्ति काहिन्ति
		(भू)		
उ.पु.	होस्सामि होहिमि	होस्सामो होहिमो	(होहामि)	(होहाम)
म.पु.	होस्ससि होहिसि	होस्सह होहिह	होहिसि	(होहथ)
अ.पु.	होस्सइ होहिइ	होस्संति होहिंति	होहिति	(होहिन्ति)
	(पा)		(दा)	
उ.पु.	पाहामि, पाहं	पाहामो	दस्सामि(दस्सं)	दस्साम
म.पु.	पाहिसि	पाहिह	दस्ससि	दस्सथ
अ.पु.	पाहिइ	पाहिंति	दस्सति	दस्सन्ति
	ठा (स्था)		सो (श्रु)	
उ.पु.	ठाइस्सामि	ठाइस्सामो	सोस्सामि	सोस्साम
म.पु.	ठाइस्ससि	ठाइस्सह	सोस्ससि	सोस्सथ
अ.पु.	ठाइस्सइ	ठाइस्संति	सोस्सति	सोस्सन्ति
	(दृश्)		(लभ)	
उ.पु.	दच्छामि	दच्छामो	लच्छामि(लच्छं)	लच्छाम
म.पु.	दच्छिसि	दच्छिह	लच्छसि	लच्छथ
अ.पु.	दच्छिहिइ	दच्छिहिंति	लच्छति	लच्छन्ति

[प्राकृत में संस्कृत 'द्रक्ष्य्' का 'दच्छ' और पालि में संस्कृत 'लप्स्य्' का 'लच्छ' बन कर उनके रूप मिलते हैं ।]

[प्राकृत में आत्मनेपद के प्रत्ययों जैसे म.पु., ए.व. 'से', अ.पु., ए.व. 'ए' और बहुवचन 'न्ते, इरे' तथा पालि में ए.व. 'अं'; 'से'; 'ते' और बहुवचन म्हे, मसे; व्हे; न्ते, अरे' के साथ भी रूप कभी कभी मिलते हैं ।]

अपभ्रंश (भविष्य काल)

उ.पु. (ए.व.)	पालेसमि	होसमि, करेसमि, (बोल्लिस्सं) कहेहामि पेक्खिहिमि, करीहिमि *पाविसु, कुट्टिसु, करीसु, करेसु, देसु, पेक्खेसु, होहिस्सु
उ.पु. (ब.व.)	पालेसहुँ	जीवेसहुँ, लहेसहुँ, करिसहुँ, करिस्सहुँ, सेविस्सहुँ
म.पु. (ए.व.)	पालेसहि	होसहि, करेसहि, सहेसहि, पेक्खेसहि तरिहहि करिहिसि, होहिसि, जाणिहिसि.
म.पु. (ब.व.)	पालेसहु	करिसहु
अ.पु. (ए.व.)	पालेसइ	होसइ, करेसइ होहइ करिहइ, मरिहइ, जिणिहइ होहिइ, करिहिइ

अ.पु.	पालेसहिँ	होसहिँ, भजेसहिँ.
(ब.व.)		होहहिँ
		करिसहिँ
		जाणिस्सहिँ
		करिहिंति

[★'पाविसु' इत्यादि में प्रथम पुरुष एक वचन में 'उ' प्रत्यय स्पष्ट दिखाई देता है ।]

(iii) आज्ञार्थ

	(हस) प्राकृत		पालि		अपभ्रंश	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	हसामु	हसामो	हसामि	हसाम	–	हसहुँ
	हसमु	हसाम	–	हसेमु		
		हसेम्ह				
		हसेम				
म.पु.	हस	हसह	हस	हसथ	हस,	हसहु
	हससु		हसाहि			हसह
	हसाहि					
	हसेसु					हसहो
	हसहि					
	हसेहि				हसस्स,हसे	हसहों
अ.पु.	हसउ	हसंतु	हसतु	हसन्तु	हसउ	हसंतु
						हसहुं

	प्राकृत	(कथ्)	पालि		प्राकृत	(या)	पालि	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	कहेमु	कहेमो	कथेमि	कथेम	जामु	जामो	यामि	याम
			कथयामि	कथयाम				
म.पु.	कह,कहेसु	कहेह	कथेहिं	कथेह	जासु	जाह	याहि	याथ
	कहेहि		कथय	कथयथ	जाहि			
अ.पु.	कहेउ	कहेंतु	कथेतु	कथेन्तु	जाउ	जायंतु	यातु	यन्तु
			कथयतु	कथयन्तु				
		(भू)				(अस्)		
उ.पु.	होमु	होमो	होमि	होम	—	—	अस्मि	अस्म
म.पु.	होसु	होह	होहि	होथ	—	—	अहि	अत्थ
अ.पु.	होउ	होंतु	होतु	होन्तु	त्थु	—	अत्थु	सन्तु

पालि-आत्मनेपद

ए.व.	उ.पु.	म.पु.	अ.पु.	ब.व.	उ.पु.	म.पु.	अ.पु.
	लभे	लभस्सु(लभसु)	लभतं		लभामसे(लभम्हसे)	लभव्हो	लभन्तु

(iv) विधिलिंग

	प्राकृत	(लभ्)		पालि
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	**लहेज्जामि**	**लहेज्जाम**	**लभेय्यामि**	**लभेय्याम**
	लहेज्ज, लहेज्जा		**लभेय्यं, लभे**	**लभेम, लभेमु**
म.पु.	**लहेज्जासि**	**लहेज्जाह**	**लभेय्यासि**	**लभेय्याथ**
	लहेज्ज,लहेज्जा	लहेज्जह	लभेय्य, लभे	लभेथ
	लहेज्जसि, लहेज्जसु			
	लहेज्जहि, लहेज्जाहि			
	लहेज्जासु			
अ.पु.	**लहेज्ज,लहेज्जा**	**लहेज्ज**	**लभेय्याति**	**लभेय्यु**
	लहे, लहेज्जइ	लहेज्जा	लभेय्य, लभे	लभेय्युं

अपभ्रंश भाषा में प्राकृत के समान ही रूप चलते हैं, मध्यम पुरुष के कुछ प्रचलित रूप इस प्रकार हैं :-

	ए.व.	ब.व.
म.पु.	भुंजेज्जसु, जिणेज्जसु	रक्खेज्जहु

	प्राकृत(कुछ अन्य रूप)		पालि(आत्मनेपद)	
	ए.व.	ब.व.	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	वट्टे, लहेअं, गच्छे, वट्टेअं	-	(लभेय्यं)	लभेमसे (लभेय्यम्हे)
म.पु.	वट्टे, गच्छे	-	लभेथो	(लभेय्यव्हो)
अ.पु.	वट्टे	वट्टे	लभेथ	(लभेरं)

	पालि	(अस्)		प्राकृत
	उ.पु.	म.पु.	अ.पु.	अ.पु. ए.व
ए.व.	सियं, अस्सं	अस्स	सिया, अस्स	
ब.व.	अस्साम	अस्सथ	सियं, अस्सु	सिया

[दा, नी, भू एवं कथ् के प्राकृत में क्रमशः दे, णे, हो एवं कहे तथा पालि में दद-दे, ने, ही-हे एवं कथे में प्रत्यय लगाकर रूप चलते हैं ।]

(v) भूत काल

बीते हुए समय की विभिन्न अवस्थाओं को प्रकट करने के लिए तीन भूत कालों का प्रयोग होता था परंतु प्राकृत भाषाओं में इनका लोप होने लगा । परोक्ष भूत काल तो बिल्कुल अदृश्य हो गया और अनद्यतन एवं सामान्य भूत काल एक दूसरे में मिलकर फिर लुप्त हो गये । भूत काल के कुछ रूप प्राचीन पालि साहित्य में और अल्पांश में अर्धमागधी साहित्य में मिलते हैं । बाद के प्राकृत साहित्य में भूत काल के रूप नगण्य ही रहे और अपभ्रंश में तो इनका भी पूर्णतः लोप हो गया । प्राकृत में वस्तुतः भूत काल का बोध प्रायः कर्मणि भूत कृदंत के द्वारा किया जाने लगा ।

(१) प्राचीन प्राकृत में भूत काल के लिए प्रायः अन्य पुरुष एक वचन के लिए 'इत्था' एवं 'इत्थ' और बहु वचन के लिए 'इंसु' (अंसु) प्रत्यय लगाये जाते हैं परंतु उनका प्रयोग वैसे सभी पुरुष और वचनों के लिए भी मिलता है और क्रियापद के पूर्व क्वचित् आगम के रूप में 'अ' भी जोड़ा जाता है ।

	(ए.व.)	प्राकृत	(ब.व.)
(अ)	सेवित्थ, लभित्थ,		सेविंसु, पुच्छिंसु, भासिसु, बंधिसु,
	सेवित्था, सम्पज्जित्था,		वेदिंसु, करिंसु (अकरिंसु, अतरिंसु)
	विहरित्था, रोइत्था,		(लभित्थ, होत्था, पाउब्भवित्था)
	होत्था (अहोत्था)		आहंसु (आहुः-ब्रू)
	(करिंसु, आहिंसिसु)		

(ब) कुछ अन्य रूप इस प्रकार भी मिलते हैं :-

उ.पु. अकरिस्सं, पुच्छिस्सं वुच्छामु(वस)

(स) प्रायः सभी पुरुषों एवं वचनों के लिए भूत काल के लिए 'सि (सी)', 'ही' और 'इ (ई)' प्रत्यय भी मिलते हैं :-

(सि)	(ही)	(इ)
अकासि, अकासी, कासि (कृ)	काही	अचारि (चर्)
वयासि, वयासी (वद्)		अचारी (चर्)
ठासि, ठासी, (स्था)	ठाही	
कहेसि, कहेसी (कथ्)		
अहेसि, अहेसी (भू)		भुवि (भू)

(द) 'दृश्' के 'अद्दक्खु, अद्दक्खू, अदक्खु' रूप मिलते हैं ।

(२) **पालि भाषा में सामान्यतः 'अ'कारान्त धातुओं में तीनों पुरुषों में एक वचन के लिए क्रमशः 'इं', 'इ', 'इ' और बहु वचन के लिए 'इम्ह', 'इत्थ', 'इंसु या उं' प्रत्यय लगाये जाते हैं तथा अन्य**

स्वरान्त धातुओं में 'सिं', 'सि', 'सि' और 'सिम्ह', 'सित्थ', 'सुं या अंसु' लगाये जाते हैं तथा धातु के पहले आगम 'अ' वैकल्पिक रूप से लगाया जाता हैं ।

(अ)	ए.व. (पच्)	ब.व.	ए.व. (भू)	ब.व.
उ.पु.	पचिं, अपचिं	पचिम्ह, अपचिम्ह	अहोसिं	अहोसिम्ह
म.पु.	पचि, अपचि	पचित्थ, अपचित्थ	अहोसि	अहोसित्थ
अ.पु.	पचि, अपचि	पचुं, अपचुं	अहोसि	
		पचिंसु, अपचिंसु	अहेसि	अहेसुं

(ब) अन्य धातुओं के कुछ उपलब्ध रूप :

	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	अस्सोसिं	–
म.पु.	अकासि, अञ्ञासि, अस्सोसि	–
अ.पु.	अकासि, अञ्ञासि, अस्सोसि	अकासुं, अस्सोसुं
	अदासि	अकंसु, अट्ठंसु

(स) पालिं भाषा में कभी कभी निम्न प्रकार के रूप भी मिलते हैं :

	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	अदं (दा), अगमं (गम्)	अदम्ह (दा), अहुम्ह (भू),
	अभुवं (भू) अहुं (भू)	अस्सुम्ह (श्रु) अगमाम (गम्),
	अगमिसं, अगच्छिसं (गम्)	अकराम (कृ), अहुं (भू)
म.पु.	अदो, अदा (दा)	अदत्थ (दा), अकत्थ (कृ)
	अगमा (गम्)	अगमत्थ, अगमथ (गम्)
	अहू (भू)	अस्सुत्थ (श्रु)
अ.पु.	अदा (दा), अट्ठा (स्था)	अदुं, अदू (दा), अवोचुं (वच्)
	अगा, अगमा (गम्)	अगमुं (गम्), अकरुं (कृ)
	अभिदा (भिद्)	
	अगमासि (गम्)	अगमिसुं (गम्)
	अहु, अहू (भू)	अहू, अहुं (भू)

(३) 'ब्रू' और 'भू' के रूप :

ए.व. प्राकृत	ब.व.	(ब्रू)	ए.व.	पालि	ब.व.
आह	आहु, आहू, आहंसु		आह		आहु, आहंसु
		(भू)			
अभु, अभू	—		अहु(अहू)		अहुं
अहु, अहू	—				

(४) 'ब्रू' एवं 'अस्' के रूप :

	प्राकृत	ए.व.	पालि	ब.व.
अब्बवी	दोनों	अब्रविं, आसिं	अब्रविम्ह,	आसिम्ह
आसि, आसी	वचनों	अब्रवि, आसि	अब्रवित्थ,	आसित्थ
—	एवं	अब्रवि, आसि	अब्रविंसु,	आसिंसु
	पुरुषोंमें			आसुं

(५) पालि में आत्मनेपद के प्रत्यय वाले कुछ रूप इस प्रकार मिलते हैं :

	ए.व.	ब.व.
उ.पु.	-(इं, इ)	अकरम्हसे, -(म्हे)
म.पु.	(अ) पुच्छित्थो,-(से)	-(व्हो)
अ.पु.	(अ)पुच्छित्थ, अभासथ	अबज्झरे, अमञ्ञरुं -(इत्थुं)

(vi) कालातिपत्ति (हेतुहेतुमद्भूत)

(धातु के पहले आगम 'अ' वैकल्पिक है ।)

	(ए.व)	(अ) पालि	(ब.व.)
(अ)	उ.पु. अभविस्सं, (इस्सं)		अलभिस्साम (इस्साम)
	अदस्सं, अपापेस्सं, ओलोकेस्सं		आगमिस्साम,-(इस्सम्ह)
	म.पु. अभविस्स (इस्स)		-(इस्सथ)
	अ.पु. अभविस्स (इस्स), अदस्स, पापुणिस्स, अकरिस्स, अलभिस्स		अभविस्संसु (इस्संसु)

(ब) आत्मनेपद के प्रत्यय

(अ) - इस्सं	(अ) - इस्साम्हसे
(अ) - इस्ससे	(अ) - इस्सव्हे
(अ) - इस्सथ	(अ) -इस्सिसु

(ब) प्राकृत

पश्चात् कालीन प्राकृत साहित्य में इसका प्रयोग वर्तमान कृदन्त युक्त रूपों द्वारा किया गया हैं : न्त, माण=भणंतो, भणंती, भणंता, भणमाणो, भणमाणी, होंतो, होमाणो, करेंतो, इत्यादि ।

जइ रावणो सीयं न हरंतो तो तस्स वहो न होन्तो ।

(vii) पूर्ण वर्तमान एवं पूर्णभूत

प्राकृत भाषाओं में कर्मणि भूतकृदन्त के साथ 'अस्' धातु के वर्तमान काल के रूप लगाकर पूर्ण वर्तमान एवं 'अस्' के भूत काल का रूप 'आसि' लगाकर पूर्ण भूत काल प्रकट किया जाता है ।

(प्राकृत) पूर्ण वर्तमान	(पालि) पूर्ण वर्तमान
(अहं) गद म्हि, उत्तिण्णो मि,	पब्बजितो म्हि, स्मि, म्मि वञ्चितो म्मि
पूर्ण भूत	ठितो सि
अहं उववसिदो आसि	सीतिभूता'म्ह
सो गओ आसि	आगता'त्थ
देवी गदा आसि	

६. कृदन्त एवं प्रयोग

(i) वर्तमान कृदन्त

(अ) वर्तमान कृदन्त बनाने के लिए धातुमें 'अन्त' और 'मान' प्रत्यय समान रूपसे प्रयुक्त होते हैं । आत्मनेपद और कर्मणि वाच्य के लिये 'मान' प्रत्यय का अलग से उपयोग नहीं होता है ।

प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
गच्छंत, गच्छमाण	गच्छन्त, गच्छमान	(प्राकृत के समान
वसंत, वसमाण	वसन्त, वसमान	परंतु कृदन्त के आगे स्वार्थे
कंपंत, कंपमाण	कम्पन्त, कम्पमान	'अ' भी कभी कभी
देन्त, देयमाण	देन्त	लगाया जाता है ।)
होंत, होअमाण	होन्त	पुं. रडंतय, जंतय
गायंत, गायमाण	लभन्त, वत्तन्त	स्त्री. लहंतिअ,
वायंत, ठायमाण	खज्जन्त, मुच्चन्त,	उड्डावंतिअ
लहन्त, वट्टंत	याचियन्त	
भणिज्जन्त, दिज्जन्त		

(अस्)

सन्त, समाण	सन्त, समान

(ब) अवशिष्ट के रूप में 'मीन' और 'आन' प्रत्यय भी मिलते हैं ।

प्राकृत	पालि
बुयाबुयाण	कुब्बाण, सयान
आगममीण	–

(ii) भविष्यत् कृदन्त

धातु में 'इस्स' लगाकर यह कृदन्त बनाया जाता है ।

आगमिस्सं, भविस्सं, मरिस्सं (पुंलिंग एवं नपुंसकलिंग एकवचन)

(iii) हेत्वर्थ कृदन्त

(अ) हेत्वर्थ के लिए प्राकृत में 'उं, इउं' पालि में 'तुं; इतुं' और अपभ्रंश में 'हुं, अणहं' प्रत्यय धातु में जोड़े जाते हैं । कुछ अन्य रूपों के उदाहरण भी मिलते हैं ।

प्राकृत	पालि	प्राकृत	पालि	प्राकृत	अपभ्रंश	प्राकृत	पालि
दाउं	दातुं	हसिउं	हसितुं	गाइउं	पुच्छहुं	गंतुं	गन्तुं
पाउं	पातुं	सुणिउं	सुणितुं	खाइउं	जुज्झहुं	वोत्तुं	वत्तुं
काउं	कातुं	पुच्छिउं	पुच्छितुं	उट्ठिउं	सिक्खहुं	दट्ठुं	दट्ठुं
णाउं	ञातुं	मरिउं	मरितुं	हसेउं	करणहं		
णेउं	नेतुं			वारेउं	सेवणहं		
सोउं	सोतुं			मारेउं	धवलणहं		

(ब) प्राचीन प्राकृत भाषा (अर्धमागधी) में 'त्तए और इत्तए' का प्रयोग मिलता हैं- तरित्तए, पुच्छित्तए, करित्तए, करेत्तए, भोत्तए, होत्तए

(स) प्राचीन पालि में 'तवे, तुये और ताये' का प्रयोग भी मिलता हैं : दातवे, नेतवे, सोतवे; कातुये, मरितुये, गणेतुये; पुच्छिताये, खादिताये

(द) प्राकृत और पालि में 'तु' प्रत्यय के बाद 'काम' वाले कुछ प्रयोग भी मिलते हैं -

प्राकृत-जीविउकाम, गंतुकाम, दट्ठुकाम

पालि-जीवितुकाम, गन्तुकाम, दट्ठुकाम

(क) प्राकृत और पालि में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग हेत्वर्थ के लिए होता है-करणाय, सवनाय, दस्सनाय

(ख) प्राकृत में सम्बन्धक भूत कृदन्त 'त्ता त्तु (इत्तु, ट्टु)' इत्यादि का प्रयोग हेत्वर्थ के लिए होता है-

(देखिये सम्बन्धक भूत कृदन्त प्रकरण)

(ग) अपभ्रंश में प्राकृत के 'उं, इउं' के सिवाय अन्य हेत्वर्थ कृदन्त इस प्रकार मिलते हैं -

(i) अण-सहण, करण, कहण (ii) अणहिं-भुंजणहिं, मुंचणहिं

(iii) अणु-धरणु (iv) एव्वइं-करेव्वइं (v) एवं-करेवं, चएवं

(घ) अपभ्रंश में सम्बन्धक भूत कृदन्त हेत्वर्थ के लिए भी प्रयुक्त होता है-

अवि-करवि, जिणवि	इउ-हरिउ
इवि-करिवि, धरिवि	पि-गंपि
एवि-करेवि	पिणु-गंपिणु
एविणु-करेविणु	प्पि-करेप्पि, जेप्पि
इ-करि, मारि, मुणि	प्पिणु-करेप्पिणु, गमेप्पिणु

(iv) संबंधक भूत कृदन्त

संस्कृत भाषा में 'त्वा' और 'य' के उपयोग का जो भेद था वह प्राकृतों में मिट गया। दोनों प्रत्यय मूल धातु और उपसर्ग युक्त धातु का भेद-भाव किये बिना लगाये जाने लगे।

(अ) प्राकृत में प्रचलित प्रत्यय 'ऊण, ऊणं, इऊण, इऊणं' (तूण) हैं, पालि में 'त्वा', 'त्वान' हैं और अपभ्रंश में 'एप्पि, एप्पिणु, एवि, एविणु' हैं। अन्य प्रत्ययों के उदाहरण भी नीचे दिये गये हैं, अपभ्रंश में तो अनेक प्रत्यय मिलते हैं।

प्राकृत	पालि	अपभ्रंश
दाऊण (णं)	दत्वा, ददित्वा	जिणेप्पि, जिणेप्पिणु
काऊण (णं)	कत्वा, कत्वान	करेवि, करेविणु
नाऊण (णं)	ञत्वा, ञत्वान	गमेप्पि, गमेप्पिणु
नेऊण (णं)	नीत्वा, नेत्वान	हरेवि, हरेविणु
सोऊण (णं)	सुत्वा, सुत्वान	सुणेवि, सुणेबिणु
होऊण (णं)	भुत्वा, भुत्वान	तोडेप्पि, तोडेप्पिणु
वंदिऊण (णं)	वन्दित्वा	पेक्खेवि, पेक्खेविणु
हसिऊण (णं)	हसित्वा	हसेवि, हसेविणु

पडिऊण (णं)	पतित्वा	करेप्पि, करेप्पिणु
भणिऊण (णं)	भणित्वा	भणेप्पि, भणेप्पिणु
भरेऊण (णं)	भरित्वा	भरेवि, भरेविणु
बंधेऊण (णं)	बन्धित्वा	बंधेप्पि, बंधेप्पिणु

(ब) कुछ 'तून' वाले रूप :-

प्राकृत-कातूण, गंतूण, मोत्तूण, भेत्तूण, भोत्तूण, लद्धूण, दट्ठूण,
पालि-कातून, गन्तून, मन्तून, जनितून, आपुच्छितून

(स) प्राकृत एवं पालि के 'य' प्रत्यय वाले रूप :-

प्राकृत-गहाय, पासिय, निम्माय, जहाय, सुणिअ, थुणिअ, पेक्खिअ, सुमरिअ (प्रायः शौरसेनी और मागधी में)

पालि-गहाय, सुणिय, आदाय, भविय, छिन्दिय, सुमरिय, अभिञ्ञाय (कभी कभी 'य्य' वाले रूप-अभिभुय्य पप्पुय्य)

(द) संस्कृत के रूप ध्वनि परिवर्तन के साथः-

प्राकृत--समेच्च, आहच्च, (समेत्य, आहत्य)

पालि-पेच्च, समेच्च, आहच्च, पटिगच्च, पटिच्च (प्रेत्य, समेत्य, आहत्य, प्रतिगत्य, प्रतीत्य)

प्राकृत-पप्प, परिगिज्झ, उवलब्भ, निक्खम्म, पक्खिप्प, आरब्भ

(प्राप्य, परिगृह्य, उपलभ्य, निष्क्रम्य, प्रक्षिप्य, आरभ्य)

पालि-आगम्म, आरब्भ, परिचज्ज, लद्धा

(आगम्य, आरभ्य, परित्यज्य, लब्ध्वा)

(क) प्राचीन प्राकृत में 'त्ता, (ता), त्ताणं, (त्ताण), त्तु, (इत्तु, ट्टु) याण, (याणं) एवं आए' युक्त रूप भी मिलते हैं (प्रायः अर्धमागधी में)

त्ता-वंदित्ता, आगमेत्ता, भेत्ता, छेत्ता, करित्ता, करेत्ता, गंता, वंता,
त्ताणं-भवित्ताणं, करेत्ताणं, आपुच्छित्ताणं, चिट्ठित्ताणं

त्तु-वंदित्तु, जाणित्तु आहट्टु (आहृत्य)

याण-परिपालियाण, लहियाण, पलिभिंदियाणं, संसिंचियाणं

आए-आयाए (आदाय), अणुपेहाए, निस्साए

(ख) प्राचीन पालि में भी 'यान, यानं' वाले रूप मिलते हैं-

उत्तरियान, पक्खन्दियान, खादियानं, अनुमोदियानं

(ग) प्राचीन प्राकृत में (अर्धमागधी) में 'च्चा, च्चाणं, च्चाण'

(त्य, त्वा, त्वान) वाले रूप भी मिलते हैं-

पेच्चा, समेच्चा, दच्चा, होच्चा, ठिच्चा, सोच्चा, किच्चा, सोच्चाण, नच्चाण, नच्चाणं

(घ) दृश् धातु के रूप इस प्रकार भी मिलते हैं -

प्राकृत-दिस्सा, दिस्स, पस्स; पालि-दिस्वा, दिस्वान

(च) प्राकृत में हेत्वर्थ के प्रत्यय 'उं, इउं' का प्रयोग संबंधक भूत कृदन्त के लिए भी होता हैं ।

(छ) अपभ्रंश भाषा में प्राकृत के 'ऊण, ऊणं एवं य' के सिवाय अनेक अन्य प्रत्यय मिलते हैं -

पि-गंपि इवि-सुणिवि, धरिवि
पिणु-गंपिणु इ-परिहरि, मारि, बइसी, उड्डी
उं-दाउं, काउं, नेउं इउ-भणिउ, फरिउ, उप्पडिउ, णिसुणिउ
वि-होवि, जिणवि इय(इअ)-मुणिअ, जोइअ, होइअ

(ज) अपभ्रंश में हेत्वर्थ एवं संबंधक भूत कृदंत आपस में एक दूसरे के लिए अधिक मात्रा में प्रयुक्त होते हैं ।

(v) विध्यर्थ कृदन्त

(अ) प्राकृत में मुख्य प्रत्यय 'अणिज्ज (अनीय) हैं, 'अव्व, इअव्व' (तव्य) के प्रयोग भी मिलते हैं । 'अणीअ' प्रायः मागधी शौरसेनी में मिलता है । पालि में 'तब्ब (तव्य)' और 'अनीय' मिलते हैं । अपभ्रंश का प्रत्यय 'एव्वउ' हैं । 'य' प्रत्यय वाले रूप ध्वनि-

परिवर्तन के साथ मिलते हैं । कुछ अन्य उपलब्ध रूप भी नीचे दिये गये हैं ।

(प्राकृत)	(पालि)	(अपभ्रंश)	(प्राकृत)	(पालि)	(अपभ्रंश)
करणिज्ज	करणीय	करेव्वउ	हसिअव्व	हसितब्ब	करिएव्वउ
पूअणिज्ज	पूजनीय	करेव्वउं	हसेअव्व	पूजेतब्ब	करिएव्वउं
होअव्व	होतब्ब	मारेव्वउ	जाणिअव्व	जिणितब्ब	मारेवअ
सोअव्व	सोतब्ब	मारेव्वउं	पूअणीय	दस्सनीय	चरिव्वउ
नायव्व	ञातब्ब	करेवउ	करणीअ	लभनीय	करेबउ
कायव्व	कातब्ब	मारेवउ			

(ब) अन्य विरल रूप इस प्रकार मिलते हैं-

प्राकृत	पालि	पालि	पालि	अपभ्रंश
(तव्व)	(नेय्य)	(य्य)	(तय्य, तेय्य)	(एवा, बा)
कातव्व	पूजनेय्य	नेय्य	ञातय्य	करेवा
मोतव्व	दस्सनेय्य	देय्य	ञातेय्य	सोएवा
भोत्तव्व		पेय्य	पत्तय्य	जग्गेवा
दट्ठव्व			पत्तेय्य	करेबा
वोत्तव्व				जाणेबा
				कब्बा
				पाबा

(स) 'य' प्रत्यय युक्त ध्वनिपरिवर्तन वाले रूप इस प्रकार मिलते हैं । प्राकृत-भव्व, वच्च, वक्क, गुज्झ, कज्ज, दुल्लंघ, पेज्ज (भव्य, वाच्य, वाक्य, गुह्य, कार्य, दुर्लंघ्य, पेय)

पालि-भब्ब, लब्भ, खज्ज, हञ्ञ, (भव्य, लभ्य, खाद्य, हन्य)

(vi) कर्मणि भूत कृदन्त

(अ) कर्मणि भूत कृदन्त बनाने के लिए धातु में प्रायः 'त'

और कुछ धातुओं में 'न' जोडा जाता हैं । प्राकृत में 'त' का प्रायः 'अ' 'य' (इअ, इय) और 'न' का 'ण' हो जाता हैं ।

(प्राकृत)	(पालि)	(प्राकृत)	(पालि)	(प्राकृत)	(पालि)
भूअ, (हूअ)	भूत	पडिअ	पतित	भिण्ण	भिन्न
कय	कत	चरिअ	चरित	छिण्ण	छिन्न
णाय	ञात	पेसिअ	पेसित	दिण्ण	दिन्न
गीय	गीत	पुच्छिअ	पुच्छित	जिण्ण	जिण्ण
पीय	पीत	इच्छिअ	इच्छित	हीण	हीन
सुय	सुत	जिणिअ	जिनित	लीण	लीन
संत (श्रान्त)	सन्त	कारिअ	कारित	रुण्ण	रुण्ण
		हसाविअ	हसापित		

(ब) ध्वनि परिवर्तन के साथ अन्य रूप प्राकृत एवं पालि में :
भुत्त, खित्त, भग्ग, परिमुक्क, पुट्ठ, दिट्ठ, नट्ठ, दड्ढ, लुद्ध
(भुक्त, क्षिप्त, भग्न, परिमुक्त, पृष्ट, दृष्ट, नष्ट, दग्ध, लुब्ध)

(स) अपभ्रंश में कृदंत के आगे स्वार्थे 'अ' (क) भी मिलता हैं :-
जायअ, मुक्कअ, इत्यादि.

(द) प्राकृत और अपभ्रंश में कर्मणि भूत कृदन्त के लिए 'इल्ल' भी कभी कभी जोड़ा जाता है-पुच्छिल्ल, आणिल्ल(य)

(क) पश्चकालीन प्राकृत भाषा में एवं अपभ्रंश में सकर्मक क्रिया के कर्मणि भूत कृदन्त के साथ कर्ता का रूप तृतीया विभक्ति में प्रयुक्त होने के बदले उसका प्रथमा विभक्ति का रूप प्रयुक्त होने लगा और क.भू. कृदन्त प्रथमा विभक्ति के अनुरूप बनकर भूत काल का बोध कराने लगा, जैसे-

अहं पभणिओ (मए पभणिअं), सा भासिआ (तीए संभासिअं) गणहरो पकहिओ (गणहरेण पकहिअं), रुप्पिणी पसूया पुत्तं (रुप्पिणीए पसूयं पुत्तं), भोयणं भुत्ता मो (अम्हेहिं भोयणं भुत्तं), सो कहं कहिउं आरद्धो (तेण

कहं कहिउं आरद्धं).

अपभ्रंश सो पहासिउ (तेन प्रभाषितम्), जक्खपहाणउ पजम्पिउ (यक्षप्रधानेन प्रजल्पितम्), भुअंग विसग्गि मुक्क (भुजङ्गेन विषाग्निः मुक्तः)

(vii) कर्तृ भूत कृदन्त

कर्तृ भूत कृदन्त बनाने के लिए कर्मणि भूत कृदन्त के रूप के आगे **'वं, वा, वन्त,** (वत्) **या आवी'** (आविन्) प्रत्यय लगाया जाता है और यह रूप कर्ता का विशेषण बन कर भूत काल का बोध कराता है।

प्राकृत- कयवं (कृतवान्), पुट्ठवं (स्पृष्टवान्)

पालि- सुतवा, सुतवन्त, सुतावी, वुसितवा, वुसितवन्त, वसुतावी, भुत्तवा, भुत्तवन्त, भुत्तावी.

(viii) कर्मणि प्रयोग

(अ) कर्मणि प्रयोग का प्रत्यय 'य' है । शौरसेनी एवं मागधी में वह प्रायः 'ईअ', महाराष्ट्री और अपभ्रंश में 'इज्ज' और पालि में 'य' एवं 'ईय' तथा कभी 'इय्य' के रूप में मिलता है ।

	प्राकृत	पालि	
गमीअ	गमिज्ज	पञ्ञाय (प्रज्ञा)	पुच्छीय
गच्छीअ	गच्छिज्ज	हाय (हा)	सोधीय
कहीअ	कहिज्ज	जीय, जिय्य (जि)	हरीय
ठीअ	ठिज्ज	हीय, हिय्य (हा)	*पूजिय
दीअ	दिज्ज	दीय, दिय्य (दा)	चोदिय
होईअ	होज्ज	धीय, धिय्य (धा)	मारिय
मारीअ	मारिज्ज	सूय (श्रु)	पोसिय
करावीअ	कराविज्ज	नीय, निय्य (नी)	दस्सिय

(★इनमें 'इ' का प्रयोग स्वरभक्ति के रूप में है-पूजियते (पूज्यते)

(ब) ध्वनि परिवर्तन वाले कुछ अन्य रूप :-

पालि-पच्च, कच्छ, विज्ज, भञ्ञ, हञ्ञ, दिस्स (पच्य, कथ्य, विद्‌य, भण्य, हन्य, दृश्य)

प्राकृत-गम्म, भिज्ज, जुज्झ, लब्भ, हम्म, मुज्झ, किज्ज, णज्ज, भण्ण (गम्य, भिद्य, युध्य, लभ्य, हन्य, मुह्य, क्रिय, ज्ञाय, भण्य)

प्रालि-प्राकृत के कुछ और रूप :-

दीस, जीर, तीर, पूर (दृश्य, जीर्य, तीर्य, पूर्य)

(स) भावे प्रयोग :-अकर्मक क्रिया का कर्मणि प्रयोग भाववाच्य प्रयोग कहलाता है ।

उदाहरण :- खिज्जिज्जइ, जुज्झिज्जइ, डरिज्जइ, थुक्किज्जइ, पडिज्जइ, बीहिज्जइ, मरिज्जइ, रोइज्जइ, होइज्जइ, हसिज्जइ ।

(ix) प्रेरक प्रयोग

प्रेरक रूप बनाने के लिए धातु में **'अय, पय या आपय'** के लिए प्राकृत में **'ए, वे या आवे'** जोड़ा जाता है और पालि में **'ए, पे, या आपे'** जोड़ा जाता है । अपभ्रंश में अंतिम **'ए'** तत्त्व कभी कभी **'अ'** में बदल जाता हैं और एक अन्य प्रत्यय **'आड'** भी लगता हैं ।

प्राकृत		पालि		अपभ्रंश
दंसे	ठावे	दंसे	ठापे	नास
दस्से	णहावे	दस्से	नहापे	नाह
दरिसे	दरिसावे	दरिसे	दापे	हसाव
पूरे	पण्णवे	पूरे	पञ्ञापे	कराव
वड्ढे	जाणावे	वड्ढे	जानापे	निम्मव
वत्ते	हसावे	वत्ते	हसापे	विण्णव
हासे	पुच्छावे	हासे	पुच्छापे	
कारे	करावे	कारे	कारापे	'ड'
धारे	गण्हावे	धारे	गण्हापे	भमाड
मारे	मारावे	मारे	मारापे	

(x) नाम धातु

'नाम' शब्दों में 'आय(आअ)', 'अय (ए)' अथवा, 'आवे', 'आपे' प्रत्यय लगाकर उनका धातुओं की तरह प्रयोग किया जाता है; कभी कभी सीधा 'नाम' शब्द ही धातु के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।

प्राकृत	पालि	प्राकृत	पालि	प्राकृत	पालि
धूमाअ(य)	धूमाय	उच्चारे	धूमय	दुहावे	आमन्तापे
सुहाअ(य)	सुखाय	ण्हाणे	मन्तय	सद्दावे	सुखापे
अमराअ(य)	करुणाय	खेले	कण्डय	उवक्खडावे	
अत्थाअ(य)	चिराय	गोवे	गोपय		
उम्हाअ(य)	सद्दाय	(मंतय)	विजटे		
संझाअ(य)	पियाय	(गोपय)	सुखे		
गरुआअ(य)	(पुत्तीय)	–	पिण्डे		
हंसाअ(य)	(धनीय)	–	थेने		

धातु के अर्थ में नाम शब्द का प्रयोग :

प्राकृत- जम्म, मंड, दुक्ख, मिस्स, अप्पिण, धवल

पालि- धूप, सज्झाय, उस्सुक्क

७. शब्द-रचना

(क) विशेषण

सार्वनामिक शब्दों में निम्न प्रत्यय लगाने से वे विशेषण बन जाते हैं :

(i)

(प्राकृत)	(अपभ्रंश)
'त्तिय, त्तिल, त्तअ' [प्रत्यय]	'वड, वड्ड, त्तडय, त्तुल'
एत्तिय, इत्तिय, एत्तअ, एत्तिल	एवड, एवड्ड, एवड्डय, एत्तडय, एत्तुल
केत्तिय, कित्तिय, केत्तअ, केत्तिल	केवड, केवड्ड, केत्तडय, केत्तुल
जेत्तिय, जित्तिय, जेत्तअ, जेत्तिल	जेवड, जेवड्ड, जेत्तडय, जेत्तुल
तेत्तिय, तित्तिय, तेत्तअ, तेत्तिल	तेवड, तेवड्ड, तेत्तडय, तेत्तुल

(ii) 'इत्तअ'-प्राकृत में कर्ता के अर्थ में नाम के साथ 'इत्तअ' लगाया जाता है :

णिवेअणइत्तअ, विआसइत्तअ, पूरइत्तअ

(iii) 'इम'-धातु मे 'इम' लगाकर विशेषण बनाया जाता है :

खाइम, साइम, वंदिम, पूइम, पूरिम, पाइम (कभी कभी अन्य शब्द में भी-वंकिम, पुरत्थिम, पच्छत्थिम).

(iv) 'आर'-अपभ्रंश में सर्वनाम में 'आर' लगाकर विशेषण बनाया जाता है : अम्हार, तुम्हार, महार, तुहार

(v) 'ह+य'-अपभ्रंश में सर्वनाम में 'ह+य' एवं 'इस, ईस' लगाकर विशेषण बनाया जाता है :

जेह, जेहय, जेहउ (यादृश), तेह, तेहय, तेहउ (तादृश)

केह, केहय, केहउ (कीदृश), एह, एहय, एहउ (ईदृश)

(vi) 'इस, ईस'-अईस, अइस, कईस, कइस, जईस, जइस, तइस, तईस (ईदृश, कीदृश, यादृश, तादृश (कभी कभी इसी अर्थ में केहि, जेहि, तेहि रूप भी मिलते हैं ।)

(vii) 'इर'-शीलार्थे : धातु में 'इर' लगाया जाता हैं :
गमिर, जंपिर, हसिर (इसे कर्तृ कृदन्त कहते हैं ।) कभी कभी नाम शब्द में भी यह लगाया जाता हैं : गव्विर, लज्जिर)

(viii) 'अणअ'-अपभ्रंश में धातु में शीलार्थे 'अणअ' भी जोड़ा जाता हैं :
बोल्लणअ, भसणअ, मारणअ (इसे कर्तृ कृदन्त कहते हैं ।)

(ix) स्वामित्व अथवा युक्तता वाचक प्रत्यय :
नाम शब्द में निम्नलिखित प्रत्यय जोडे जाते हैं :

(अ) 'आल'- सद्दाल, रसाल, जडाल, धणाल, जोण्हाल

(ब) 'आलु'- संकालु, सद्धालु, णिद्दालु, लज्जालु, ईसालु
(खीराल, दाढाल, हड्डाल, गुणाल, सोहाल, गिद्धालु, तिट्ठालु-अपभ्रंश)

(स) 'इल्ल'- कलंकिल्ल, लोहिल्ल, सोहिल्ल, माइल्ल, गुणिल्ल, गंठिल्ल, कंटइल (कंटइल्ल)
[तत्रभवे-गामिल्ल, गामेल्ल, पुरिल्ल, हेट्ठिल्ल]

(द) 'उल्ल'-मंसुल्ल, सद्दुल्ल, वाउल्ल, विआरुल्ल, कीडउल्ल (अपभ्रंश)
[तत्रभवे-तरुल्ल, नयरुल्ल]

(ख) भाववाचक प्रत्यय

भाववाचक प्रत्ययों में 'त' और 'इमा' के सिवाय प्राकृत में 'त्तण' और अपभ्रंश में 'प्पण' और 'इम' नये प्रत्यय हैं ।

(i) 'त्त'-पुप्फत्त, फलत्त, माणुसत्त

(ii) 'इमा'-रत्तिमा, कालिमा, पुप्फिमा

(iii) 'त्तण'-पुप्फत्तण, फलत्तण, माणुसत्तण, देवत्तण, महुरत्तण
'तन'-वेदनत्तन, जारत्तन, पुथुज्जनत्तन (पालि)

(iv) 'प्पण'-भलप्पण, वड्डप्पण

(v) 'इम'-वंकिम, गहिरिम, लघिम, सरिसिम

(vi) 'इय'-नग्गिय (नग्नता), मन्दिय (मन्दता), दक्खिय (दक्षता) (पालि)

(ग) स्वार्थे प्रत्यय

(i) स्वार्थे 'अ, य, ग' (क) का प्रयोग प्राकृत से भी अपभ्रंश में अधिक बढ गया। अपभ्रंश में 'अ' का 'उ', स्त्रीलिंगी प्रत्यय 'आ' का 'अ' और कृदन्तों एवं अव्ययों में भी 'अ' जोड़ा जाने लगा।

अ. प्राकृत-पुत्तअ, चंदअ, लहुअ, गुरुअ, सद्दालअ, लज्जालुअ, एक्कल्लअ, महल्लअ, पढमिल्लग, गामेल्लग, अंधिल्लग।
वहिणिआ, इत्थिआ (स्त्रीलिंगी)।
बहुयअ (दो बार 'अ')।

ब. अपभ्रंश-बप्पुडअ, वंकुडअ, चूडुल्लय।
उवएसडउ, भावडउ, मेहडउ, एत्तडउ, तेत्तडउ।
बहिणिअ, इत्थिअ, गोरिअ, मुणालिअ, (स्त्रीलिंगी)।
जन्तउ, रहिअउ, फुल्लिअउ (कृदन्त)।
इहय (अव्यय)

(ii) अल-अंधल, पक्कल, नवल, पत्तल, नग्गल, पोट्टल (अपभ्रंश)

(iii) अल्ल-अंधल्ल, पिसल्ल, एक्कल्ल, एकल्ल, महल्ल

(iv) आण-सुक्काण

(v) इल्ल-अंधिल्ल, पुव्विल्ल, पढमिल्ल, बहिरिल्ल, हेट्ठिल्ल

(vi) इल-पढमिल

(vii) उल्ल-मोरुल्ल, बहिणुल्ल, चूडुल्ल (अपभ्रंश)

(viii) अपभ्रंश के प्रत्यय जो लघुता सूचक भी हैं :

ड-देसड, मित्तड, हिअड, रुक्खड, दीहड, वंकड।
उट, उड-वंकुट, वंकुड, बप्पुड।
डी (डिया)-गोरडी, णिद्दडी, बुद्धडी, रत्तडी (स्त्रीलिंगी)
डा (डय)-दुक्खडा, सुक्खडा, मेलावडा (स्त्रीलिंगी)

(घ) स्त्रीलिंगी प्रत्यय

अपभ्रंश में स्त्रीलिंगी 'आ' प्रत्यय के बदले में 'ई', एवं 'ई' के बदले में 'इ'; और 'इअ' भी प्रयुक्त होते हैं :

रुट्ठी(रुष्टा), दिण्णी (दत्ता); जोअंति, गणंति (गणयन्ती); उड्डावंतिअ

(च) समास

समास का अर्थ है संक्षेप अर्थात् थोड़े शब्दों को जोडकर अधिक अर्थ प्रकट करने की प्रक्रिया । प्राकृत में ध्वनि-परिवर्तन का वृद्धि के साथ साथ समास के शब्द कभी कभी अमिश्रित सीधे सादे सरल शब्द बन गये, जैसे-लेहारिय (लेखहारिक), इंदीआल (इन्द्रियजाल), पितुच्छा (पितृष्वसा), देउल (देवकुल) ।

प्राकृत भाषा में समास संस्कृत की तरह ही बनते हैं परन्तु इनमें शब्दों का क्रम कभी कभी तर्क-संगत नहीं रहता हैं : जैसे-मूढदिसो (दिङ्मूढः), पच्छन्नपलास (पलाशप्रच्छन्न), धवलकओववीअ (कृतधवलोपवीत), कासारविरलकुमुआ (विरलकुमुदकासाराः), कंचुआभरणमेत्ताओ (कञ्चुकमात्रा-भरणाः) ।

समास इस प्रकार हैं :

(i) द्वन्द्व-दो या अधिक शब्द इसमें एक साथ आते हैं :

जीवाजीवा, दुकतिकं, जरामरणं, सुहदुक्खाइं, देवदानवगन्धव्वा, नाणदंसणचरित्तं

(ii) द्विगु-इसमें प्रथम शब्द संख्यासूचक होता है :

चउक्कसायं, नवतत्तं, तिभवा

(iii) अव्ययीभाव-इसमें प्रारंभ में आनेवाले अव्यय के अर्थकी प्रधानता होती है :

अन्तोपासादं, मज्झेगंगं, अणुरूवं, उवगुरुं, पइदिणं, जहासत्ति, सायंकालं

(iv) कर्मधारय-यह विशेषण एवं विशेष्य का समास हैं । कभी कभी इसका पूर्वपद उपमासूचक भी होता है :- सेतकपोतो, का-पुरिसो,

नीलुप्पलं, घरमोरो, वीरजिणो, जिणेंदो, सीलधनो, वज्जदेहो

(v) बहुव्रीहि–एक से अधिक पद मिलकर किसी अन्य पद का विशेषण के रूप में बोध कराते हो :- मूढदिसो, लंबकण्णो, बहुधनो, पीअंबरो, दिन्नभोजनो

'न' बहुव्रीहि–अभयो, अणाहो, अपुत्तो; 'स' बहुव्रीहि–सफलं, सणाहो

(vi) तत्पुरुष–इसमें उत्तरपद की प्रधानता होती है एवं पूर्वपद जिस विभक्ति (द्वितीया से सप्तमी) से उत्तरपद से जुड़ा हो उसका लोप हो जाता है ।

द्वितीया–गामगतो (ग्रामं गतो), सुहपत्तो, इंदियातीतो

तृतीया–उरगो (उरसा गतो), रसपुण्णं, दयाजुत्तो

चतुर्थी–बहुजणहिओ (बहुजनाय हितः), धम्ममंगलं, बुद्धदेय्यं

पञ्चमी–नगरनिग्गतो (नगरात् निर्गतः), संसारभीओ, रिणमुत्तो

षष्ठी–देवमंदिरं (देवस्य मंदिरम्) राजपुत्तो, फलरसो, लेहसाला

सप्तमी–कलाकुसलो (कलासु कुशलः), धम्मरतो, विसयासत्ति

'न' तत्पुरुष–निषेधसूचक 'अण' या 'अ' के साथ –

अदिट्ठ, अमोघो, अणिट्ठं, अणायारो

उपपद–कृदन्त साधित पद के साथः- धम्मधरो, सुखाहारो, गंठिछेदओ, कुंभगारो, सव्वण्णु, पायवो, नीयगा, पावनासगो

८. अव्यय, परसर्ग एवं देश्य शब्द

अ. अव्यय

अव्यय उन शब्दों को कहते हैं जिनमें वचन एवं लिंग के कारण कोई परिवर्तन नहीं होता है ।

(i) अव्ययों में क्रियाविशेषण, संयोजक, विस्मयबोधक एवं पादपूर्ति करनेवाले शब्दों का समावेश होता हैं ।

(ii) कितने ही अव्यय ध्वनिगत परिवर्तन प्राप्त नहीं करने के कारण संस्कृत, पालि एवं प्राकृत में एक समान हैं । उनके थोड़े से उदाहरण ये हैं :-

अतीव, अद्धा, अन्तो, अन्तरा, अलम्, इध, एव, कामम्, तम्, तेन, न, पुरे, मा, विना, समम्, सह, हा, हि, हैं, इत्यादि ।

(iii) कुछ ऐसे अव्यय भी हैं जो पालि और प्राकृत में ही मिलते हैं : ओरं (समीप इस पार), अङ्ग, अंग (हे) इत्यादि ।

(iv) कुछ ऐसे अव्यय हैं जो केवल पालि में ही मिलते हैं परंतु प्राकृत में नहीं मिलते हैं :- अञ्ञदत्थु (निश्चयेन), अप्पेव (अप्येव), इङ्घ (इङ्ग), एकज्झं (एकधा), करह (कदा), कुहं (कुत्र), जे (स्त्रीसम्बोधने), तग्घ (निश्चयेन), तत्रसुदं (तत्र स्विद्), तथंरिव (तथैव), तहं(तत्र), पटिच्च(प्रतीत्य), पसय्ह(प्रसह्य), यथरिव(यथैव), सचे (यदि), सेय्यथापि (तद् यथा), हवे (निश्चयम्), इत्यादि ।

(v) कुछ ऐसे भी हैं जो प्राकृत में मिलते हैं परंतु पालि में नहीं मिलते हैं :- हंजे (दास-दासी सम्बोधने), हंदि, हीमाणहे, ही-ही, हुं ।

(vi) अनेक ऐसे अव्यय हैं जो पालि और प्राकृत में समान रूप में या अल्प ध्वनिगत परिवर्तन लिए हुए मिलते हैं, जैसे-

(अ) पालिप्राकृत-अज्ज, अत्थ, किमु, चे, तत्थ, तर्हि, पगे, पेच्च, रिते, विय, सुवे, सं, हन्द, इत्यादि ।

(ब) पालिप्राकृत : अग्गतो - अग्गओ, अचिरं-अइरं, अञ्ञमञ्ञं-अन्नमन्नं,

अम्भो–अम्हो, इदानी–इयाणी, उद–उअ, उदाहु–उदाहो, उयाहु, किमुत–किमुय, सकिं–सइं, सज्जु–सज्ज, सज्जो, स्वे–सुवे, हंद–हंता, हिय्यो–हिज्जो, इत्यादि ।

(स) पालि एवं प्राकृत की उपरोक्त, (अ) एवं (ब) के अनुसार, इस समानता के कारण नीचे जो अव्यय दिये गए हैं उनमें पालि के अव्यय अलग से नहीं दर्शाये गये हैं ।

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
अकृत्वा	अकट्टु	
अग्रतस्	अग्गओ	
अग्रे	अग्गे	अग्गइ
अङ्ग	अंग	
अचिरम्	अइरं	
अचिरेण	अइरेण	अइरिण
अतः	अओ	
अति	अइ	
अतीव	अईव	
अत्यर्थम्	अच्चत्थं	
अत्र	इत्थ, एत्थ	इत्थु, एत्थु, इत्तहे, एत्तहे, इत्थि, एत्थउ, एउ
अथ	अह	
अथ किम्	अहइं	
अथवा	अहवा, अहव, अहवण, अदुवा, अदुव	अहवइ
अदस्	अदु	
अध	अज्ज	अज्जु, अजु
अधस्	अह, अहे	
अधस्तात्	अहत्ता, हेट्ठा	अहुट्ठहं

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
अधुना	अहुणा	एवहिं
अध्यात्मम्	अज्झत्थं, अज्झप्पं	
अनन्तरम्	अणंतरं	
अन्	अण	
अन्तर्	अंतो	
अन्यत्र	अण्णत्थ, अन्नत्थ	अण्णेत्तहें
अन्यथा	अण्णहा	अण्णह, अन्नह
अन्यदा	अण्णया	
अन्योन्यम्	अण्णमण्णं, अण्णोण्णं अन्नमन्नं, अन्नोन्नं	
अपरेद्युः	अवरज्ज	
अपि	पि, वि, अवि	इ, वि, मि, हि
अभीक्ष्णम्	अभिक्खणं	
—	अम्महे	
—	अम्मो	अव्वो, अव्वा
अयि	अइ	
अरे	अरे	अरि
अरेरे	अरेरे	अरिरि, अररि
अलम्	अलं	आलैं
अलंहि	अलाहि	
अवश्यम्	अवस्सं	अवसें, अवस, अवसि, अवसिं अवसय, अवसु, अवस्सु, अवस्सइं
असकृतम्	असइं	
अस्तु	अत्थु	
अस्तम्	अत्थं	
अहो	अहो	अहु, उहु

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
आदि	आइ	
आम्	आम, आमं	
आविस्	आवि	
आहत्य	आहच्च	
इतस्	इओ, इत्तो, एत्तो	एत्तहि, एत्तहें
इतरथा	इयरहा, इहरा	
इति	इइ, इअ, इत्ति, ति	इय, इउ
इत्थम्	इत्थं	
इदानीम्	इयाणि, इयाणिं, इदाणी,	इत्ताहे, एमहिं, एवहिँ
	दाणि, दाणिं, एण्हं, एण्हि	ऍवहिं, एम्वहिं
इव	पिव, विअ, व्व, व, चिअ	मिव, विव, विउ, ण, णं
इह	इहअ, इहइं, इहं, इहयं	इहु, इहँ, इहाँ
ईषत्	ईसि, ईसिं	कूर
उत	उअ, उद	
उताहो	उदाहो, उयाहु	
उत्तरश्वस्	उत्तरसुवे	
उपरि	उवरि, उवरिं, उप्पि	उप्परिं
	अवरि, अवरिं	
ऊर्ध्वम्	उड्ढं	
ऋते	रिते	
एकदा	एगया, एकइया,	
	एक्कइया, एक्कया	
एकशः	एगसो, एक्कसि	इक्कसिं
एकान्ततस्	एगंतओ	
एव	चिअ, च्च, जेव,	जि, ज्जि, ज्ज

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
	च्चेअ, च्चेव, च्चिअ, ज्जेव, ज्जेव्व, जेव्व	
एवम्	एवं	एम्व, एम्वहिं, एम, एमइ, एमु, इम, एवँ, एउँ, एउं, इउँ, एवहिं, एवि
एवमेव	एमेअ, एमेव	एम्वइ, एवँइ, एमेव
कथञ्चित्	कहंची, कहंचि	केमइ, किवइ
कथम्	कहं, कह, किण्णा	केम, कॅम, किम, किमि, केवँ, केव, किॅव, किँव, किव, किउं, काहउ, किह, किध
कथमपि	कहंपि, कहंवि	कहवि, कहामि, कहव, केमइ, केमइं, किवइ
कदा	कया, कइआ	कइयहा, कईया, कइयहँ, कइयह
कदाचित्	कयाइ, कयाइं, कयाई, कइयाइ	
कद्वा	––	कब्वे
कल्य	कल्ल, कल्लं	
कस्मात्	कीस	
कामम्	कामं	
किंनु	किण्णु	
किन्तु	किंतु	
किन्नु	किंणा, किण्णा	
किम्	किं, इं, किण	

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
किमिदम्	किंणेदं	
किमुत	किमुय	
किम्-यु	किमु	
कियच्चिरम्	केवच्चिरं	
किल	किर, इर	किरि
कुतस्	कओ, कत्तो, कुओ, कुत्तो	कउ
कुत्र	कत्थ, कुत्थ, कहि, कहिं, कहिआ	केत्थु, कित्थु, कहिँ, कुइ
क्षिप्रम्	खिप्पं	छुडु
खलु	खु, खो, हु	
च	य	
चापि	चावि	
चिरम्	चिरं	चिरु
चेत्	चे	
चैव	चेव	चिय, च्चिय, चेब
–	ज्जिअ, ज्जेअ (निश्चयसूचक)	
झटिति	झडि, झडित्ति, झत्ति, झडत्ति	झडवि
–	णाइ, णाइं, (निषेध)	
ततस्	तओ, तत्तो, तो	तु
तत्र	तत्थ, तहिं, तहि	तिह, तइ, तेत्थु, तित्थु तत्तु, तेत्तहे; तेत्तहिं, तेत्तहि
तथा	तहा, तह	तेम, तिम, तेम, तिमु, तेमु, तिम्व, तेवँ, तेउँअ, तिह, तिध

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
तदा	तया, तइया, ताहे	तामइ, तावइ, ता, तो, तइयहं, तइयहिँ, ताइय, ताइयहँ, ताइयहु, तहिँ, तहिं
तद्वा	–	तव्वे, तब्बे
तावत्,	ताव, ता	ताउ, ताउं, ताम, तामु, तावँ, तावइ, तावइँ, तामहिँ, ताउँ, तउ, ताब
तावन्मात्रम्		तेत्तडउ, तित्तिडउ
तु	उ	दु
त्वरम्		तरु
	थु (तिरस्कार सूचक)	
–	थू (निंदासूचक)	
–	थू थू (घृणासूचक)	
दिवा	–	दिवे, दिवे
दुष्ठु	दुठ्ठु	
द्राक्	दउत्ति, दडवड	डवत्ति, ढावु
धिक्	–	छी–छी, धिसि
धिगस्तु	धिरत्थु	
ध्रुवम्	धुवं	ध्रुवु, ध्रउ
न	ण	
न–इह	–	णेँह
ननु	णणु, णं	
न–परम्	नवरं, णवरं, णवरि	णवर, णवरु

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
नमस्	नमो, णमो	
नापि	णवि	णइ, णउ, ण
नास्ति	नत्थि	णाहिँ, नाहिँ, णाहि
नितराम्	–	णिरारिउ, णिरु
नित्यम्	णिच्चं	णिच्चु
–	णिरुत्त (निश्चितम्)	णिरुत्तउं, णिरु
नु	णु	
नैव	णेव, णेअ, णेय	णहि, णहिँ, णवि
नो	णो	
परस्परम्	परोप्परं, अवरोप्परं अवरोवरं	अवरोप्परु, अवरुप्परु
पश्चात्	पच्छा	पच्छ, पच्छए, पच्छइ
पार्श्वे	–	पासि, पासु, पासेहिँ
पुनः	पुणो, पुण, उण, पुणा पुणाइ, पुणाइं	पुणु
पुरतस्	पुरओ	
पुरस्	पुरं, पुरे	
पूर्वम्	पुव्विं, पुव्वि	
प्रगे	पगे	
प्रत्यक्षम्	पच्चक्खं	
प्रभूतम्	पभूयं	घणउं
प्रायस्	पाय	प्राउ, प्राइव, प्राइम्व, पग्गिम्व
प्रेत्य	पेच्च	
बहिस्	बाहि, बाहिं, बहिं, बहिया, बाहिर	बहि, बाहिरि, बाहिरउ, बाहुडि, बाहेर

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
बहिर्धा	बहिद्धा	
बाढम्	बाढं	लइ
बाह्यतस्	बज्झओ	–
भूयस्	भुज्जो	
मनाक्	मणयं, मणा, मणं	मणाउँ, मण, मणाउं
मन्ये	नाइ, नावइ,	नउ, मणु, णावइ, णाइं, णाइँ, णउ, जणि, जणु, वणे
मा	मा	म,मं
मा-अति	माइं	
मृषा	मुसा, मुस, मूसा, मोसा	
यतस्	जओ, जत्तो	
यत्र	जत्थ, जहि, जहिं, जहियं,	जिह, जहिँ, जेत्थु, जित्थु, जेत्तहे. जेतहिँ, जत्तु
यथा	जहा, जह	अह, जेम, जिम, जेम्व, जिवँ, जेवँ, जिव, जिह, जेहउ
यदा	जया, जइया, जाहे	जइय, जइयह, जावइ, जामइ, जावँइ, जइयहं, जइयहुं
यदि	जइ	छुडु
यद्वा	–	जब्बे
यावत्	जाव, जा, जावं	जावँ, जाम, जामु, जाब, जामहिँ जाहु, जाउँ

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
यावन्मात्रम्	–	जित्तिउ
वरम्	वरि	
वा	व,व्व	
	वइ (पादपूर्ति)	
		वइं (खेदार्थम्)
विना	विणा	विणु, बिणु,
वारम्वारम्	वारंवारं	वार-वार, वलि-वलि
शनिकम्	सणियं	सणिउं
शम्	सं	
शीघ्रम्	सिग्घं	छुडु
श्रेयस्	सेयं	
श्वस्	सुवे	
सकृत्	सइं, सइ	
सदा	सया, सइ	
सद्यस्	सज्ज, सज्जं, सज्जो	
समम्	समं	सउँ
सम्मुखम्	संमुहं	समुहुँ, समुह, सउँहुँ
सम्यक्	सम्मं	
सर्वतस्	सव्वओ, सव्वतो, सव्वत्तो	सव्वत्तउ
सर्वत्र	सव्वत्थ	सव्वेत्तहे
सर्वथा	सव्वहा	
सर्वदा	सव्वया	
सह	सह	सहुं, सहुँ, सहु
साक्षात्	सक्खं	

संस्कृत	प्राकृत	अपभ्रंश
सार्धम्	सद्धिं	
सुष्ठु	सुट्ठु	
स्फुटम्	फुडं	फुड्डु
स्यात्	सिया	
स्वयम्	सयं	सइं, सइँ, सइ, सए
स्वस्ति	सोत्थि	
–	हंजे	
–	हंदि	
हन्त	हंत, हंता, हंद	
हम्	हं	
हम्भो	हं हो, अम्हो	
हा	ह, हा,	हउं
हा- धिक्	हद्धि	
–	ही ही	
–	हीमाणहे	
हुम्	हुं	
ह्यस्	हिज्जो, हिज्जा,. हिओ	

(vii) पाद-पूर्ति-अर्थक शब्द :-

पालि-अस्सु, खो, चे, पन, यग्घे, सु, सुदं, ह

प्राकृत-अह, इ, खाइं, घइं, जे, णं, र, ह

ब. परसर्ग

अपभ्रंश भाषा अयौगिक बनने लगी अतः उसमें संबंध तत्त्व नाम शब्द से अलग होकर परसर्ग के रूप में विकसित होने लगा । अपभ्रंश के कुछ मुख्य परसर्ग इस प्रकार हैं :-

— केरउ, केरय, तणइ, तणउ, अणउ, णउ, नउ (सम्बन्धार्थे),

— केहिँ, तेहिँ, रेसिँ, रेहिँ, कारणे, कज्जे (कृते-के लिए)

— सिउ, सुं, होंतउ, ठिउ, थिउ (में से)

समाणु (समकम्), लग्गेवि (आरभ्य), लगि (लग्नम्), भणेवि (इति कृत्वा), माहिं (मध्ये), बिच्चि (बीच में), मत्थए (उपरि), इत्यादि ।

स. देश्य शब्द

प्राकृत साहित्य में देश्य, देशी अथवा देशज कहलाने वाले शब्दों की विपुलता है । उनकी मात्रा क्रमशः बढ़ती गयी है । पालि भाषा में क्वचित् ही देश्य शब्द हैं जबकि अपभ्रंश भाषा में उनकी संख्या बहुत बढ़ गयी हैं । इन देश्य शब्दों की परंपरा आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं में भी चालू रही है ।

देशीनाममाला, प्राकृत कोषों, प्राकृत व्याकरणों एवं प्राकृत साहित्य में ऐसे अनेक देश्य शब्द देखने को मिलेंगे जिन्हें सही अर्थ में देश्य नहीं कहा जा सकता । इसका कारण यह है कि उनमें अल्प अथवा दूरगामी ध्वनिगत एवं अर्थगत परिवर्तन आ जाने के कारण अथवा उनका आधार प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के साहित्य में न मिलने के कारण वे पहिचाने नहीं जा सके और देश्य ही कहलाने लगे । अब उनका सम्बन्ध प्राचीन भारतीय आर्य भाषा के साथ स्थापित होता जा रहा है और ऐसी अवस्था में उन्हें तद्भव ही कहा जा सकता है । कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनका सम्बन्ध द्राविडी अथवा अन्य विदेशी भाषाओं के साथ पाया जाता है । इनके अलावा जो शब्द मिलते हैं उन्हें शुद्ध देश्य शब्द कहा जा सकता है । नीचे विविध तरह के कुछ शब्द दिये जा रहे हैं ।

(i) तद्भव शब्द

(अ) ऐसे शब्द जिन्हें शुद्ध तद्भव कहा जा सकता है :

अणिहण (अनिधन), अब्भिड (आस्मिट्), अवड (अवट), उत्थल्ल (उद्-स्थल्), उद्दाल (उद्दारय्), उल्ल (उद्र), ओस (अवश्याय), किडि (किटि), गोच्छ (गुच्छ), घियऊरि (घृतपूर), चोक्ख (चोक्ष), छंड, छड्डु (छर्द्), जूर (ज्वर्), ढुक्क (ढौक्), णियच्छ (नि-चक्ष्), णिहाय (निघात), तिम्म (स्तिम्), थूह (स्तूप), धाह (धावथ), पल्लट्ट (परि-अट्), फुल्लंधय (फुल्लन्धय), बलिमद्द (बल-मर्द), भल्ल (भद्र), मोड (मुट्), रहट्ट (अरघट्ट), बाहियालि (बाह्य-आलि), विहाण (वि-भा), सेरिह (सैरिभ), हत्थियार (हस्त-कारयः)

(ब) ऐसे शब्द जिनमें परिवर्तन के कारण अर्थ की विशिष्टता आ गयी है :

अब्भपिसाअ (अभ्रपिशाच) राहु, अमयरुह (अमृतरुह) चन्द्र, उप्परियण (उपरितन) उत्तरीय, कउल (कापालिक), कच्छ (कक्ष) उपवन, कम (क्रम) पाद, खुज्जय (कुब्जक) असमतल भूमि, खेड, खेव (क्षेप) विलम्ब, घरयंद (गृहचन्द्र) आदर्श, चंदक (चन्द्रक) मयूर, छण (क्षण) पूर्णिमा, जमकरण (यमकरण) मृत्यु, णिट्ठ (नि-स्था) समाप्त, तलवट्ट (तालवृन्त) पुच्छ, कर्ण, दुप्पोस (दुष्पोष) मंस, धवल (श्रेष्ठ), पंक (पङ्क) पाप, पहुल्ल (प्रफुल्ल) पुष्प, पाडल (पाटल) हंस, पिंचणिहि (पिच्छनिधि) मयूर, बहुणयण (इन्द्र), भसण (भषण) श्वान, मड्डु (मृद्) बलात्कार, मब्भीस, माभीस (मा भैषीः) सान्त्वना, मुहल (मुखर) शंख, रिट्ठ (अरिष्ट) काग, वणरुह (व्रणरुह) रुधिर, वलग्ग (अवलग्न) आरूढ, विच्छोअ (विक्षुभ) वियोग, सास (शास्) कथय्, सिहिण (शिखिन्) स्तन, सुरगुरु (चार्वाक), सोंदाल (शुण्डाल) हस्ति।

(स) ऐसे शब्द जिनका मूल संस्कृत के समान है परंतु वे प्राकृत के प्रत्ययों से युक्त हैं :

अरहिल्ल (अर्हत्-इल्ल) केवलज्ञानी, अलाहि (अलम्-आहि) पर्याप्त, आवड (आपत्-अड) करना, जानना, कडिल्ल (कटि-इल्ल) कटिवस्त्र, कोक्क (कू) आह्वान, गहिल्ल (ग्रह-इल्ल) पागल, चच्चिक्क (चर्चइक्क) मण्डन, चुक्क

(च्यु–क्क) चूकना, छइल (छेक–इल) चतुर, छेइल्ल (छेद–इल्ल) अन्तिम, जणेर (जन्–कर, यर) पिता, णंक (नास्–क) नाक, पक्कल (पक्क–ल) समर्थ, पत्तल (पत्र+ल) कृश, पेढाल (पीढ–आल) विस्तीर्ण, बोहित्थ (वह्–त्र, त्थ) नौका, महल्ल (महत्–ल्ल) वृद्ध, मोक्कल (मुक्त–ल) बन्धनमुक्त, विवरेर (विपरीत–इर) विपरीत, विसंथुल (वि–संस्था–उल) शिथिल, विहल, संकडिल्ल (सङ्कट–इल्ल) आकीर्ण,. सुहिल्ल–सुहेल्लि (सुख–इल्ल) सुख

(द) सादृश रचना वाले शब्द :

खद्ध (खा–द्ध; लभ्–लद्ध), गीढ (गिह–ग्रह; गुह–गूढ), डक्क (डस्; दंश–दष्ट), णावइ (ज्ञायते; सुव्वइ–श्रूयते), रमाणी (रम; इन्द्र–इन्द्राणी), लुक्क (लुक्क्, लुप्–लुप्त) ।

(क) संस्कृत कोषों एवं अन्य स्त्रोतों से उपलब्ध :

अक्खाड (अक्षपाट), इण (इन) सूर्य, कोट्ट (दुर्ग), खप्पर (खर्पर) भिक्षापात्र, जंगल (मांस), डिंभय (डिम्भ) शिशु, तोंड (तुंद) उदर, फड (फट) सर्पफणा, भम्म (भर्म) सुवर्ण, मयगल, (मदकल) हस्ति, मराल (हंस), रसोइ (रसवती), वरइत्त (वरयितृ) वर, हिंड (हिण्ड्), हीरो (हीरक) वज्र, रत्न

(ii) ऐसे शब्द जिनकी परंपरा संस्कृत में नहीं रही परंतु अनुमान से जिनके प्राचीन स्त्रोत का पता लगाया जा सकता है :

वेल्लरी (गणिका), बीली (तरंग), वेल्लि (*विल्लि, लता) वेल्ल, वल्लरी, वेल्ला (लता), वल्ली (केश), वेल्ल (आनन्द) : *विल्; णिहेलणः (भल्–*निभेलन) गृह

(iii) अनुरणनात्मक शब्द

कसमस, किलकिल, खणखण, गुमगुम, चलवल, जिगजिग, झरझर, टणटण, ढेक्कार, तडयड, थरहर, धगधग, फरफर, फुरफुर, बेबे, रणझण, रुणझुण, लललल, लिहिलिहि, सलसल, सिमिसिम, हिलिहिल, हूहूहु ।

(iv) विदेशी शब्द

(अ) द्राविडी

अक्क (माता, भगिनी), अद्दअ (दर्पण), अम्मा (माता), अव्वो (हे मा), आरोग्गिअ (भुक्त), ओलग्ग (सेवा), उडिद (माष), कट्टारी (क्षुरिका), करड (व्याघ्र), कीर (शुक), कुंड (कुंभ), कोट्ट (नगर), कोत्थल (थैला), खट्टिक (कसाई), खड्डु (खड्डा), खडक्की (खिडकी), गड्डी (गाडी), घट्ट (नदी का घाट), छाण (गोमय), झगड (झगड़ना), झडी (निरन्तर वृष्टि) झिंदु (कन्दुक), डोंबी (म्लेच्छ), णेसर (सूर्य), तट्टी (वृति), तलवर, तलार (कोतवाल), तुप्प (घी), थट्ट (समूह), दोर (कटि-सूत्र), पड्डी (नवप्रसूता महिषी), पुल्लि (व्याघ्र), पोट्ट (उदर), पोट्टलिगा (पोटली), फिड्डु (वामन), बोंदी (शरीर), मंगुस (नकुल), माडिअ (गृह), मामामामी, मुद्दी (चुम्बन), मेरा (मर्यादा), रद्धि (प्रधान), वट्टिय (पीसा हुआ), वड्डु (बड़ा), सरा (माला), सिंबीर (पलाल), हिड्डु (वामन), हुडुक्क (वाद्य-विशेष)।

(ब) फारसी शब्द

अंगुट्ठय (अंगूठी), टिविला (वाद्यविशेष), दत्थर (हस्तशाटक), पीलु (हाथी), बंध (भृत्य)

(स) आरबी

करली, कराली (दन्तपवन) दतवन

(v) शुद्ध देश्य शब्द

अच्छोडन (त्रोटन, आस्फालन), अम्माहीरअ (स्वापगीत), अल्लिव (अर्पय्), अवरुंडण (आलिङ्गन), आयल्लय (मदनपीडित), आढत्त (आरब्ध, आक्रान्त), आसंघ (आशंस्), उड्डिय (ऊर्ध्वीकृत), उत्थर (आक्रम्), उल्लोव (चन्द्रापक), ओहलिय (प्रक्षालित), कक्खड (कठोर), कण (बाण), कंदोट्ट (नीलोत्पल), किराड (वणिक्), किलिविंडि (करतलध्वनि), कुंट (हस्तहीन), कुसुमाल (चोर), कुहणी (मार्ग), कोड्डु (कौतुक), कोणी (कूर्पर), खिच्च (खिचडी), खुट्टण (तोडन), खुप्प (मस्ज्), खेड (ग्राम), गणियारी (हस्तिनी), गलत्थ (क्षिप्), गिल्ल (आर्द्र), गोंदल (आनन्द, संग्रामध्वनि), गोस (प्रभात), गोह (योद्धा), घोट्ट (घूंट), चक्ख (आस्वाद्) चंग (चारु), चट्ट (छात्र), चड

(आरुह्) चंप (आक्रम्), चव (कथ्), चिक्खल (कर्दम), चिंच (मण्डय्), चोज्ज (आश्चर्य), छज्ज (राज्), छिव (स्पृश्), छोह अक्षिविक्षेप), जंपाण (शिबिका), टक्कर (आघात), डमर, डर (भय), डाल (शाखा), ढक्क (छादय्), ढंक (काक), ढल (पत् च्युत्), णिअ (पश्य्), णिड्डुरिय (भयानक), णिहेलण (आलय), तलिम (शय्या), तल्ल (क्षुद्र सर), दिक्करी (पुत्री), दुग्घोट्ट (गज), धण (भार्या), धाड (निर्घाटि), परियंद (आन्दोलय्), पाहुण (अतिथि), पोत्ति (स्नानशाटि), फिट्ट (भ्रंश्), बप्प(पिता), बप्पीहय(चातक), बाउल्लिय(पुत्तलिका), बुक्क(कथ्), बुड्ड (मस्ज्), भंड (कलह), भसल (भ्रमर), भुल्ल (भ्रंश्), भेरुंड (एक पक्षी), मडप्फर (मिथ्या गर्व), मडंब (ग्राम), मडह (लघु), मढिअ (खचित), मंडल (श्वान), मद्दल (मुरज), मरट्ट (दर्प), महमह (सुगंधप्रसृ), मुसुमूर (चूर्णय्), मेट्ठ, मेंठ, (हस्तिपक), राडि, रालि (कलह), रिंछ (शुक), रुंद (विपुल), रेह (शोभ्), लंजिया (दासी), लडह (रम्य), लंपिक्क, लंपेक्ख (चोर), लुह (प्रमार्जय्), लूर (विदार्), ल्हिक्क (नि+ली), वढ (मूर्ख), वंट (भाग), वंढ (अकृत-विवाह), वद्दल (मेघ), विट्टल (अपवित्र), विणड (वञ्च्), विद्दाण (म्लान), वलया (वनिता), विहलंघल (विह्वल), वुण्ण (भीत, त्रस्त), वेयार (वञ्च्) वेल्लहल (कोमल), वोल (गम्), संच (शरीर-बन्ध), सालण (व्यंजन), हडहड (अत्यन्त), हड्डि (अस्थि), हलबोल (कोलाहल), हल्लण (चलन), हल्लरु (स्वापगीत), हल्लोहल्ल (प्रक्षोभ), हित्थ (त्रस्त), हीर (शिव)

(vi) **निम्न परंपरागत देश्य शब्दों को तद्भव की कोटि में रखा जा सकता है :**

अल्लिव (आलिप्-अल्लिप्-अल्लिव), आढत्त (आ+धा, आणत्त के समान), उड्डिय (उत्+डी), उत्थर (उत्+सृ), किराड (कृ+अट्), खुट्टण (क्षुद्-क्षुन्न), खुप्प (क्षुप्+य), चक्ख (जक्ष्), चिक्खल्ल (*चि+क्षाल्य), छज्ज (छद्+य), ढक्क (*स्थक्), ढंक (ध्वाङ्क्ष), णिड्डुरिय (नि+दर्), तलिम (तल्प), धण (धन्य), फिट्ट (स्फिट्ट्), बुड्ड (ब्रुड्, व्रुड्), भसल (भस्), लुह (लुभ्), ल्हिक्क (श्लिक्न, श्लिष्), वुण्ण (व्रद्*वृद्) [देखिए : पिशल एवं मोनियर विलियम्स]

९. परिशिष्ट

अ. अर्धमागधी भाषा विषयक नयी विशेषताएँ

अर्धमागधी प्राकृत भाषा की अन्य विशेषताएँ (प्रो. हर्मन याकोबी, आगमप्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी, पं बेचरदासजी दोशी एवं प्रो. ए.एम. घाटगे के निष्कर्ष-पूर्ण मन्तव्यों के आधार से प्रस्तुत)

अर्धमागधी में मध्यवर्ती व्यंजनों का महाराष्ट्री प्राकृत की तरह प्राय:ध्वनि-परिवर्तन (लोप) नहीं होता है । उसमें यह परिवर्तन कभी कभी होता है और इसके अतिरिक्त पद-रचना के अन्य लक्षणों के आधार पर इसे पालि भाषा से अधिक निकटता रखने वाली भाषा कही गयी है । इसी कारण यह अन्य प्राकृतों से प्राय: अलग पड़ जाती है । बिलकुल जिस प्रकार अपभ्रंश 'ह'कार बहुल भाषा मानी जाती है उसी प्रकार अर्धमागधी 'ए'कार बहुल कही जा सकती है और मागधी की प्र.ए.व.की पुलिंग की 'ए'विभक्ति का ही यह प्रभाव है । अशोक के पूर्व भारत के शिलालेखों की भाषा में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं ।

१. **(अ) इस भाषा में ऋकार का 'इ' में परिवर्तन अधिक मात्रा में पाया जाता हैं :** गिह (गृह), हिदय (हृदय), अलंकिय (अलङ्कृत)

(ब) शब्द के मध्य में और अंत में भी 'ए'कार के प्रयोग मिलते हैं : अधे (अध:), ने (न:), धम्मे (धर्म:), करेति (करोति), सुणेति (श्रुणाति)

२. **मध्यवर्ती व्यंजन क, ख, त और थ का कभी कभी घोष में परिवर्तन मिलता है :** एग (एक), आघाति (आख्याति), पाद (पात-पात्र), पादगं (पातकम्), जधा, तधा, (यथा, तथा) गोरधग (गोरथक), मेधुण (मैथुन)

३. **महाराष्ट्री प्राकृत की तरह मध्यवर्ती व्यंजनों का प्राय: लोप नहीं होने से इस भाषा में व्यंजन यथावत् स्थिति में भी मिलते हैं !**

(अ) अल्पप्राण

क= अनेक, आकुल, एकदा, एकारस, घडिकं, लोक

ग= अनगार, पूगफलं, भगवता, भगिणी

च= अचलं, अचिरेण, सूचिं

ज= ओज, पूजन, भोजनं, वीजितुं

त= अणुमत, अरति, अहित, आतुर, एतं, एते, एतेण, गति, गीत, गच्छति, जीवितुं, ततिय, पवेदित, बितिय, सोत

द= अदत्तादाण, आदंसग, (आदर्शक), आदाय, उदग, उदर, उपदेस, एगदा, खादति, चोदित्ता, छन्नपदेण, छेदणं, जवोदनं, पमाद पवेदित, पादछेज्जाइं, वदासी, वदित्ताणं

प : उपकसन्ति, उपजाति, उपदेस, उपयार, उपागत

(ब) महाप्राण

घ : पडिघात

थ : पव्वथित

ध : अधे, इध, ओसध, कोध, मेधावी, वधेन्ति, सन्निधान

भ : अभि-(उपसर्ग), नाभि, पभू, विभूसा (मध्यवर्ती 'भ' प्रायः यथावत् रहता है ।)

(स) मध्यवर्ती दन्त्य नकार को मूर्धन्य णकार में बदलने की प्रक्रिया बहुत बाद की है । ई.स. पूर्व की प्राकृत भाषा में इसको इतना बड़ा स्थान प्राप्त नहीं था । यह तो ई.स. के बाद की प्राकृतों का लक्षण है । अर्धमागधी प्राकृत में शब्द के प्रारंभ में दन्त्य नकार प्रायः यथावत् (पालि भाषा की तरह) ही रहता है परंतु मध्यवर्ती नकार भी कभी कभी मिलता है । इस भाषा में मध्यवर्ती दन्त्य नकार को मूर्धन्य णकार में बदलने की जो प्रथा चल पड़ी हैं वह भी महाराष्ट्री प्राकृत के अत्यंत प्रभाव में आ जाने के कारण प्रचलित हुई है और लेखन (orthography) पद्धति की त्रुटि अथवा भ्रम के कारण भी ऐसा हुआ है ।

उदाहरण : अनियाण, अनिल, अनुगच्छंति, अनुच्चे, इंदनील, खने, जवोदनं, धनुस्खण्डं, भोजनं, परिनिव्वुड, मारुदिना, मोनं, सन्निधान, सिनाणं, सुनिट्ठिय, सुमिनं, सुहुमेनँ (सूक्ष्मेण)

(द) नासिक्य व्यंजन युक्त निम्न संयुक्त व्यंजनों का परिवर्तन न्न में पाया जाता हैं, ज्ञ=न्न : धम्मपन्नत्ती (धर्मप्रज्ञप्तिः), अन्नाणी (अज्ञानी), खेतन्न, (क्षेत्रज्ञ), पन्ना (प्रज्ञा), रन्नो (राज्ञः), विन्नाण (विज्ञान),

न्न=न्न : आवन्न, उप्पन्न, छिन्न, पडिवन्न, भिन्न, संपन्न

न्य=न्न : अन्न (अन्य), कन्ना (कन्या), जहन्न (जघन्य), धन्न (धन्य), मन्ने (मन्ये)

प्रारंभिक ज्ञ का न होता है : नच्चा (ज्ञात्वा), नाण (ज्ञान), नात (ज्ञात), नायव्य (ज्ञातव्य)

४. पदरचना के रूपों के कतिपय उदाहरण :

(अ) नाम-सर्वनाम

प्र.ए.व. : पिता, माता

प्र.ब.व. : पितरो, मातरो

द्वि.ए.व. : पितरं, मातरं

नपुंसक, प्र.द्वि.ब.व. : एताणि, कम्माणि, फलाणि, मधूणि, सप्पीणि,

तृ.ए.व. : अरहता, भगवता, चेतसा, मणसा

तृ.ब.व. : थीभि (स्त्रीभिः)

पं.ए.व. : कतो, कुतो, कन्नातो, देवीतो, धम्मतो, भगवतो, सव्वतो

स.ए.व. : भगवति

सप्तमी ए.व. के प्राचीन विभक्ति प्रत्यय -'म्हि, -म्हिं' :

अग्गिम्हि, भिक्खुम्हि, कम्हिं

(ब) क्रिया-रूप

वर्तमान काल तृतीय पुरुष एक वचन :

अभिहणति, इच्छति, करेति, गच्छति, जाणति, सुणेति; चरते, सेवते

आज्ञार्थ : तृ.पु. ए.व.:

गच्छतु

विधिलिङ्ग के प्राचीन रूप :

अच्छे, अब्भे, इच्छे, लभे, समारंभे, हणे

भूत कृदन्त :

अक्खात, नात (ज्ञात), पवेदित, सुत

प्रेरक रूप :

कारेति, कारावेति

कर्मणि प्रयोग :

छिज्जति, वुच्चति

ब. प्राचीन श्वेताम्बर जैन आगम-ग्रंथ 'इसिभासियाइं'* में से उद्धृत मूल अर्धमागधी की वह शब्दावली जो महाराष्ट्री प्राकृत के प्रभाव से वंचित रह गयी ।

क्- =-क्-

अकामकारी
अणुभासक
अणेक
अण्णायक
अन्धकार
आकार
आकुल
आमक
उप्पायक
उलूक
एकं
एकगुणेन
एकन्त
एका
कंडक
कम्मकारी
किंपाक
गवेसक
चेलक
जालकं
पडिकार
पणायिका
परलोक
पवकारघर

पावकं
पावकारिं
पुरेकडं
फलविवाक
बाहुक
भद्दक
भावका
भासक
ममक
मूलक
मूलाकं
मूलसेक
लोक
वज्जक
वणीमक
विकप्प
विपाक
सत्थक
सल्लकारी
सव्वकम्म
सव्वकाल
साकडिअ
सिलोक
सुकर
सोक

-क्-=-ग्-

परिव्वायग
लोग
वण्णाग
वागरण
विवाग
सग (स्वक)
सिलोग

-ग्-=-ग्-

अणागत
आगत
उपागत
उरग
कामभोग
जागर
जोग
जोगंधरायण
जोगकण्णा
णगर
णाग
पओग
पयोग
परलोग
परिभोग

भगवं
भागिण
भोग
मिग
मिगारि
राग
रोग
रोगी
ववगत
विगत
विप्पओग
विराग
संजोग
सराग
सोभाग

-च्-=-च-

अचलं
अचिरेण
उवचार
बम्भचारी
बम्भचेर
सुचिरं

-ज्-=-ज्-

अजात
अणुजोजित
तेजसं
तेजसा
परिजण

भजिस्सामि
भोजणं
मणुज
महाराज
रजेज्जा
विणाणति
विजाणित्ता
विजाणेज्जा
सहजा

-त-=-त-

अणिचता
अण्णतर
अति
अतीत
अपतिट्ठित
अमत
अमिता
अरति
अहित
आतुर
इतर
इति
एतं
एते
एतेण
कुतूहल
गति
चातुरन्त
जीवितातो

जोति
णिपतन्ति
ततियं
तातारं
तितिक्खा
तेतिलिपुत्त
दुम्मति
धिति
धूता
नीति
पंडित
पतिट्ठा
पाणातिपात
पाणातिवात
पाणातिवाय
पितरं
मति
महितल
मातंग
मातरं
माता
रति
विपरीत
विरति
वीतिवतित्ता
वीतिकंत
संतति
सतिमं
साता

सासत
सोत
सोभतर
हुतासं
हेतु

अरहता
धीमता

अंकुरातो
अणुपस्सतो
इतो
जीवितातो
जुत्तितो
ततो
दव्वतो
धीमतो
परतो, पुरतो
बीयातो
मूलतो
वालातो
वेज्जातो
सत्थातो
समन्ततो
सव्वतो, हुतासतो

अग्घती
अच्छिन्दति
आगच्छति
उदीरेति
एति

कप्पनि
खादति
जीवति
णिपतन्ति
तप्पति
दिज्जति
देति
पप्पति
पभासति
पवदति
पवुच्चति
फस्सति
पावेति
फन्दति
भवति
मुज्झति
लभति
वदति
विजाणाति
वेदेति
संचरति
संसरति
सज्जति
समादियति
सिंचति
सिज्झति
सीदति
सुज्झति
सोभति

हणति
हवति
हसति
हायति
हिंसति
होति
कज्जते
कुरुते
चरते
वहते
दिप्पते
पसूयते
सेवते
हसते

धारेतु
वदतु

णिवारेतुं
वारेतुं
संवसितुं
साहेतुं

अइवात
अजात
अण्णागत
अणुजोजित
अणुमत
अण्णात
अपतिट्ठित
अब्भुवगत

अभिभूत
अविरत
आगत
आहत
उवरत
कत
कीत
गहित
चोदित
ठित
बुइत
भासित
भीत
भूत
महब्भूत
मोहित
ववगत
विरत
संचित
संजुत
संभूत
समित
सुत
सुविहित
सुसमाहित
हतं
हता
हतो
हारित

-द्-=-द्-
अदत्तादाण
आदाण
आदाय
आदि
आसादिज्ज
इदाणिं
उच्छेद
उदग
उदय
उदहि
उदाहर
उदिण्ण
उदीरणा
उदीरेति
उदुपाण
उदुम्बुक
उपदेस
उप्पादय
कम्मादाण
कामभेद
कोविद
खादति
चोदित
छेद
जणवाद
णदी
णिदाण
नारद

निरादाण
निव्वेद
पदोस
पमाद
पवदति
पाद
पादव
मदिरा
मुसावाद
मूलच्छेद
मोदेज्जा
वदति
वदतु
वदन्तु
वदिस्सामि
विदित्ता
विदुणा
विसाद
विसारद
वेदणा
वेदणिज्ज
वेदेति
वेदेन्ति
संपदा
सदा
समादियति
सव्वच्छेद
सीदति
सुद्धवादिणो

सूदण
हिंसादाणं
हिदय

-न्-=-न्-

अंगना
अनल
अनवदग्गं
अनिच्च
अनिव्वाण
इंदनाग
अनुवत्त
उवनिचिज्जइ
छिन्ननासियं
परिनिव्वुडं
वनपादव

-प्-=-प्-

अपि
उपेदस
उपयर
उपागत
णिपतन्ति
पाणातिपात
रिपु
विपरीत
विपाक
विपुल
सोपायाण

-य्-=-य्-

अधियास
आयुध
उदय
गुणोदय
णयण
णायक
णियम
ततिय
थिरायु
निकाय
परकीय
पणायिका
पयोग
पसूयते
पिय
पिया
बीयातो
सेयो
हिदय

-ख्-=-ख्-

सुखेण

-घ-=-घ-

उवघात
पघात
पडिघात
परिघात
परोवघात
पुप्फघात
फलघाती
लाघवं
लाघवो
विणिघात

-थ-=-थ-

सारथी

-ध्-=-ध्-

अभिधाण
अधगामी
अधर
अधियास
अभिधाण
अभिधारय
अनिरोधी
असाधु
आयुध
इध
उवधि
ओसध
कोध
जुधिर
जोध
णिधण
णिराधार
णिरोध
दधि

दुविधा	-भ्-=-भ्-	सभाव
पत्तधर	अणुभासक	सुभ
पधाण	अभि-(तीसबार)	सोभतर
बहुधा	असुभ	सोभति
बहुविध	णिप्पभ	सोभाग
भूसणधारी	दुल्लभ	-त्-=-द्-
मधु	पभट्ठ	भविदव्वं
मधुर	पभव	-थ्-=-ध्-
मम्मवेधिणी	पभा	अधासच्चं
वधू	पभासति	जधा
वाधि	लभति	तधेव
विधीओ	लाभ	रधचक्क
विरोधी	लोभ	सव्वधा
विविध	वण्णाभ	सुणेध
संदधे	विभाग	
समाधि	विभावण	
साधारण	विभूसण	
साधु	संणिभ	

ऊपर के इन शब्द-प्रयोगों से प्रतीत होता है कि अर्धमागधी की शब्दावली अधिकतर पालि के समान ही थी जैसा कि प्रो. हर्मन योकोबी, प्रो. ए.म. धाटगे, मुनि पुण्यविजयजी एवं पं. बेचरदासजी का मन्तव्य रहा है। कालान्तर में उस पर महाराष्ट्री का बहुत प्रभाव पड़ा है क्योंकि इस प्रकार के शब्द-प्रयोग, जिनमें मध्यवर्ती व्यंजन यथावत् हो, महाराष्ट्री प्राकृत के विशिष्ट ग्रंथ गाथासप्तशती, सेतुबन्धम्, पउमचरियं, वज्जलग्गं इत्यादि में मिलेंगे क्या? प्रो. हर्मन योकोबी द्वारा संपादित आचारांग (प्रथम श्रुत-स्कन्ध) में भी इसी प्रकार की शब्दावली भी मिलती है परंतु प्रो. वाल्थर शुब्रिग द्वारा संपादित आचारांग (प्रथम श्रुत-स्कन्ध) की शब्दावली तो पूर्णतः महाराष्ट्री में बदल दी गयी है। इस दृष्टि से महावीर जैन विद्यालय, बम्बई द्वारा प्रकाशित आचारांग

का संस्करण याकोबी के संस्करण के साथ मेल खाता है और मूल अर्धमागधी के प्राचीन शब्द-प्रयोगों को प्रकाश में लाने के लिए तथा वे शौरसेनी और महाराष्ट्री से किस प्रकार से अलग हैं यह दर्शाने के लिए आचारांग जैसे सबसे प्राचीन अर्धमागधी ग्रंथ के तीनों संस्करणों (याकोबी, शुब्रिंग और मजैवि.) के सभी प्रयोगों की तुलनात्मक शब्दसूचि प्रकाशित की जानी चाहिए जिससे मूल अर्धमागधी प्राकृत के विषय में हमें अधिक स्पष्ट जानकारी प्राप्त होगी।

★ इसिभासियाइं का प्राकृत-संस्कृत शब्द-कोश : के. आर. चन्द्र, प्राकृत टेक्स्ट सोसायटी, अहमदाबाद, १९९८

संदर्भ-ग्रंथ

1. Comparative Grammar of the Prakrit Languages : R. Pischel, 1965.
2. Pali Literature and Language : W. Geiger, 1968.
3. A Comparative Grammar of Middle Indo-Arayan : Sukumar Sen, 1960.
4. Prakrit Languages and Their Contribution to Indian Culture : S.M.Katre, 1949.
5. Historical Grammar of Apabhraṁśa : G.V. Tagare, 1948.
6. Prakrit Grammar of Hemacandra; P.L. Vaidya, 1958.
7. Desīnāmamālā of Hemacandra by R. Pischel : P. V. Ramanujaswami, 1938.
8. A Critical Study of Mahāpurāṇa of Puṣpadanta (A Critical Study of the Deśya and Rare Words) : R. N. Shriyan, 1969.
9. A Manual of Pali : C. V. Joshi, 1939.
10. Introduction to Ardhamāgadhī : A. M. Ghatage, 1941.
11. Prakritic Influences Revealed in the Works of Pāṇini, Kātyāyana and Patañjali : S. D. Laddu (Proceedings of the Seminar on Prakrit Studies (1973) : K. R. Chandra, 1978.
12. Sanskrit-English Dictionary : Sir M. Monier Williams.
13. Pali-English Dictionary : T. W. Rhys Davids & W.Stede.
14. Vedic Grammar : A. A. Macdonell.
15. Early Trace and Origin of the Absolutive Participle -''इउ'' by K. R. Chandra, Vidya (Guj. Univ.) Vol. XXI-2, Aug. 1978.
16. पाइय-सद्द-महण्णवो : ह. त्रि. शेठ, १९६३
17. पालि महाव्याकरण : भिक्षु जगदीश काश्यप, १९४०
18. प्राकृत व्याकरण : पं. बेचरदास जी. दोशी, १९२५
19. प्राकृत मार्गोपदेशिका : पं. बेचरदास जी. दोशी, १९४७
20. संस्कृत-व्याकरण-प्रवेशिका : बाबूराम सक्सेना, १९५१
21. अपभ्रंश व्याकरण : ह. चू. भायाणी, १९७१